वर्ष ६, अंक ४

श्रीकृष्णाय नमः

पौष पूर्णिमा १९८८

वार्षिक चन्दा २)

सम्पादक—
म० कृष्णानन्द, भूमानन्द

एक प्रति ।)

भक्ति

अग्निदेव

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली सचित्र मासिक पत्रिका ।

वर्ष ६ | श्री भगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, पौष पूर्णिमा सं० १९८८ | अंक ४ पूर्ण संख्या ६४

वेदोपदेश

इत्सतस्य नार्यमेणं पुष्यति नो सखायं ।
केवलाघो भवति केवलादी ॥ १ ॥

अज्ञानी पुरुष व्यर्थ ही अन्न पाता है न वह इस धन से यज्ञ को पुष्ट करता है और न अपने मित्र को ही पुष्ट करता है अतः केवल भोक्ता केवल पापी होता है ॥ १ ॥

वस्यां इन्द्रासि मे पितुरुत भ्रातुरभुञ्जतः ।
माता च मे छदयथः समा वसो वसुत्वनाय राधसे ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! आप मेरे पिता से भी अधिक धनाढ्य हैं और अरक्षक भ्रातासे भी अधिक पालक हैं हे वसो ! मेरी माता और आप दोनों तुल्य हैं क्योंकि आप मेरी व्यापकता और पूज्य धन के लिये मुझको जगत् में पूजित कर रहे हैं ॥ २ ॥

त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शत क्रतो बभूविथ ।
अधा ते सुम्नमीमहे ॥ ३ ॥

हे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के बसाने हारे ! हे अनन्त काम कारिन आप ही हम सब लोगों के पालक पिता हैं और आप ही माता हैं इस कारण आप से सुख की प्रार्थना करते हैं ॥ ३ ॥

वात आवातु भेषजं शम्भु मयोभुनो ।
हृदे प्राण आयूंषि तारिषत् ॥ ४ ॥

हे परमात्मन् ! आप से यह आशीर्वाद चाहते हैं कि आप के अनुग्रह से यह वायु रोग नाशक हृदय सुख कारक औषध को हमारे लिये प्रवाहित करें ॥ ४ ॥

भोजायाश्वं संमृजन्त्याशुं भोजायाऽस्ते कन्या शुम्भमाना ।
भोजस्येदं पुष्करिणीव वेश्म परिष्कृतं देव मानेव चित्रम् ॥ ५ ॥

परिचारक गण दानी के लिये शीघ्र गामी अश्व प्रस्तुत करते हैं । दानी के लिये सुशोभमाना वस्त्राभूषिता युवती प्राप्त होती है । दानी का ही गृह कमल विभूषित सरोवर के तुल्य दीखता है और देव निर्मित सुन्दर चित्र विचित्र होता है ॥ ५ ॥

भगवद्भक्ति ।

[ले० श्री स्वामी पूज्य भोले बाबा जी]

कथा राजा भरत की ।

राजा भरत जडभरत नाम से विख्यात हैं। इनकी कथा बहुत ही प्रसिद्ध है, इसलिये संक्षेप से कहता हूं। इन्होंने संसार अनित्य जानकर राज्य छोड़दिया और वन में गंडकी नदी के तीर पर वास करके भगवत् आराधन आरंभ किया, एक हरिण के विरह से प्राण त्यागने से इन्होंने हरिण का देह पाया, फिर हरिण का शरीर त्याग कर ब्राह्मण का शरीर पाया। पूर्व जन्मों का इन को स्मरण बना रहा और हरिण के स्नेह से दो बार जन्म लेना पड़ा था इसलिये यह महाविरक्त होकर सदा भगवद्भजन में तल्लीन रहते थे, न किसी से कुछ बोलते थे और न उत्तर देते थे, इसलिये इनका जडभरत नाम हुआ।

एक बार एक भीलों का राजा काली के बलीदान के निमित्त इनको पकड़ कर लेगया। जब भील राजाने तलवार से इनको मारना चाहा, तो दुर्गा ने उसी तलवार को लेकर उस दुष्ट का वध किया और इनसे अपना अपराध क्षमा कराया।

एकबार राजा राहूगण ने इनको अपनी पालकी में लगालिया। यह चींटी बचा बचा कर

चलने लगे, इसलिये पालकी उचकती थी और कहारों के साथ चाल नहीं मिलती थी। राजा क्रोध करके कहने लगा कि इतना मोटा होने पर भी अच्छे प्रकार क्यों नहीं चलता क्या मुझ दंडदेने वाले को नहीं पहिचानता ? भरत जी ने ऐसेर उत्तर दिये कि राजा को कुछ ज्ञान हो गया और उसने चरणों में गिरकर क्षमा माँगी। भरत जी को दया आई उन्होंने उस को भगवत् के ज्ञान का उपदेश दिया। राजा कृतार्थ और ज्ञानवान् होगया।

भरत जी ने परमधाम जाते समय योगाभ्यास से देह त्याग किया और उस परम पद को प्राप्त हुए जहां से फिर नहीं लौटते। हे मंसाराम ! थोड़ी सी भी प्रीति महाअनर्थ का कारण है इसलिये स्नेह सर्वथा त्याज्य है।

छप्पय-सुग शावक से प्रेम, भरत राजाने कीन्हा।
तीन बार ले जन्म अंत अक्षय पद लीन्हा॥
स्नेह पाश भवमूल, शूल नाना उपजावे।
जो त्यागे है स्नेह, मोक्ष पद सोई पावे॥
भोला ! तज दे सगरे, हैश भजन में लागरे।
स्नेह पाश को तोड़कर, हरि में कर अनुराग रे॥

कथा अलर्क मन्दालसा सुबाहु की।

राजा रतिध्वज के पुत्र अलर्क अनन्य ज्ञानी भक्त थे। इनकी माता मंदालसा बड़ी ज्ञानवती और वैराग्यवती थी। उसने प्रणकिया था कि जो मेरे उदर से जन्म ले फिर उसको जन्म मरण का दुःख न हो जब अलर्क जी ने जन्म लिया, तो इनकी माता ने भगवद्धर्म का ऐसा उपदेश किया कि वे घरबार छोड़कर वनको चले गये और भगवद्भजन में लग-गये। पीछे जो और लड़के हुए उनकी भी अलर्क जी के समान बुद्धि थी। अन्त में छोटा बेटा सुबाहु नामका हुआ। उसको राजा ने राज्य के निमित्त मंदालसा से माँग लिया। मंदालसा ने अंगीकार कर लिया परन्तु उसे अपने प्रण का शोच रहा। उसने यंत्र के समान एक पत्री लिखकर सुबाहु को देदी और कहदिया कि जब कुछ बड़ा कष्ट आनपड़े तो इसको खोलकर पढ़ना।

जब सुबाहु को राजगद्दी का अधिकार मिला तो वह राज्य सुख में मग्न होगया। मंदालसा ने सब वृत्तांत अलर्क जी से कहा। अलर्क जी को सुबाहु पर बहुत करुणा और दया आई और वे चिन्ता करने लगे कि किसी प्रकार सुबाहु को संसार के जालसे निकालकर भगवत् सन्मुख करना चाहिये। उन्होंने काशी के राजा को आधा राज्य देनेका वचन देकर सुबाहु पर चढाई करवादि जब सुबाहु को युद्ध करने की सामर्थ्य न रही, तो वह सोच में पड़ा और माता के दिये हुए यंत्र को खोलकर पढ़ने लगा। उसमें लिखा था कि जब बहुत दुःख हो, तो सत्संग करना चाहिये, यह संसार अनित्य है, भगवत् नित्य और सच्चिदानन्दघन हैं, ऐसे स्वामी को छोड़कर जो अनित्य संसार में मन लगाते हैं, वेसदा आवागमन के जाल में फंसे रहते हैं और जो भगवच्छरण होकर भजन स्मरण में लगते हैं, वे भगवत् के परम पद को प्राप्त होते हैं। सुबाहु को इस वचन से कुछ ज्ञान होगया और सत्संग को मुख्य जानकर वह दत्तात्रेयजी के पास पहुंचा। उनके थोड़े ही उपदेश से पूर्ण ज्ञान को प्राप्त होकर सब काम काज को छोड़ अपने भाई अलर्क के पास गया और हाथ जोड़ कर कहने लगा कि आप की कृपा से राज्य और संसार के बखेड़े से छूटकर भगवच्छरण हुआ हूं, आप राजगद्दी अंगीकार कीजिये। अलर्क जी बहुत प्रसन्न हुए और कहने लगे कि मुझे राज्य की चाहना नहीं है, केवल तुम्हारे छुड़ाने के लिये मैंने यह उपाय किया था। अलर्क जी ने काशी के

राजा को कहला भेजा कि सुबाहु ने तो राज्य का त्याग कर दिया है, तुम राज्य करो। उसने सब वृत्तान्त सुना और संसार की अनित्यता पर विचार करके राज्य को अंगीकार न किया और अपने राज्य को भी छोड़ कर भगवत् के शरण होकर भगवद्भजन में मन लगाया। थोड़े काल में ही ये सब परमानन्द रूप परम पद को प्राप्त हुए।

छप्पय—कथा अलर्क सुबाहु, सार निस्सार बताती।
केवल भगवत् सार, विश्व निस्सार जताती॥
धन्य अलर्क कुमार, राज्य में चित्त न दीन्हा।
फँसता देखि सुबाहु, शुकि रच निर्भय कीन्हा॥
धन्य मातु मंदालसा, राजा ऋतुध्वज धन्य है।
सुत कीन्हें हरिभक्तजन, तिन सम को जगमन्य है।

कथा श्रुतिदेव बहुलाश्व की।

श्रुतिदेव ब्राह्मण और बहुलाश्व राजा दोनों भगवत् के परमभक्त और ज्ञानी अयोध्या में हुए। जैसे अपने भक्तों के निमित्त भगवत् अवतार धारण करके चरित्र किया करते हैं, वैसे ही चरित्र इन दोनों ने भक्तों के निमित्त किये। वृत्तांत यह है कि एक बार श्रीकृष्ण महाराज अयोध्यापुरी में गये। ब्राह्मण और राजा दोनों आगे जाकर मिले, दर्शन पाकर कृतार्थ हुए और दोनों ने अपने २ गृह के पवित्र करने के हेतु विनय किया। भगवत् ने विचार किया कि दोनों भक्त मेरे लिये बराबर हैं, किस के जाऊं और किसके ना जाऊं, यह सोच कर भगवान ने कृपा युक्त होकर सब ऋषीश्वरों सहित दो रूप होकर दोनों भक्तों के गृह को पवित्र किया चार महीने तक दोनों भक्तों के घर रहे। एक का भेद दूसरे ने न जाना। ब्राह्मण और राजा नित्य नये भाव से प्रेम सहित सेवा करते रहे और विदा के समय दोनों ने अनपायिनी भक्ति का वरदान पाया।

छप्पय—श्रुतिदेव बहुलाश्व, मित्र दोनों थे गाढ़े।
एक ब्राह्मण एक नृप, कृष्ण के अति ही प्यारे॥
अवधपुरी में कृष्ण, आय दर्शन जब दीन्हें।
घर शुचि करने हेतु, प्रार्थना दोनों कीन्हें॥
ऋषिन सहित दो रूप धर, भगवत दोनों के गये।
चार मास तक वासकर, भोला! भक्त सुख दये॥

कथा उद्धव की।

उद्धव परमभागवत् और ज्ञानी थे। यदि कृपासिंधु श्रीकृष्ण महाराज उनको मन्त्री, एकान्ती मित्र और समीपी नातेदार समझते थे, तो भी उद्धव जी सदा अपने दासभाव से भगवान का सेवन करते रहे। जब श्रीकृष्ण ने व्रजगोपियों के बोध के हेतु व्रज में भेजा तो यह वहां गये। व्रज सुन्दरियों की व्रजचन्द महाराज के वियोग में जैसे जल विना मीन तड़पती हैं, ऐसी दशा थी। उन विरहिनियों को उद्धव जी ज्ञान योग का उपदेश करने लगे परन्तु व्रजकिशोरियों के नयन, मन और प्राण सब श्रीमनमोहन श्याम सुन्दर के रूप और माधुरी के अमृत सिन्धु में मग्न थे और वे सब प्रेम और स्नेह के रस से छकी हुई मतवारी हो रही थीं। उद्धव जी का उपदेश उनको तनिक भी न लगा और वे यह वचन कहने लगीं-'हम सब व्रजबाम तो सजल मेघ समतन श्याम मुर लीधर घनश्याम पर मोहित हो रही हैं, हम ब्रह्म नहीं जानती ऐसे ऐसे प्रमाणिक उत्तर गोपियों ने दिये कि उद्धव का ज्ञान योग धूल में मिल गया और वे प्रेम में बेसुध और विह्वल होकर व्रज वल्लभाओं के चरणों में लोटने लगे, मानों अपने खोये हुए ज्ञानयोग को ढूंढ रहे हों, कभी उनके दर्शन से आपको कृतार्थ मान कर अपने भाग्य की बड़ाई करते थे, और कभी जो

आनन्द गोपियों को प्राप्त था, उस परमानन्द से हीन जान कर अपने भाग्य से लड़ते थे कि मैं इस ब्रज में गोपवधू क्यों न हुआ ? हे मंसाराम ! उद्धव जी गोपियों के प्रेम से बेसुध हो गये, इसमें कुछ आश्चर्य नहीं है क्योंकि आप ब्रजभूषण महाराज भी अपनी ऐसी ईश्वरता और प्रभुता को त्याग कर कि जिसका ब्रह्मादिक भी पार नहीं पाते, उनके प्रेम में मग्न ऐसे थे कि अपने परमधाम को छोड़ कर उनके हेतु नरशरीर धारण किया और उनकी प्रसन्नता को अपनी प्रसन्नता से भी अधिक जान कर उनकी इच्छा को पूर्ण किया उनके अनुकूल चरित्र किया और अब तक ऐसे वशवर्ती हैं कि जो कोई उनके चरित्रों को पढ़ता है, अथवा सुनता है, कैसा ही पातकी और अपराधी हो, उसके हृदय में आजाते हैं। हे मंसाराम ! इसमें संशय नहीं है कि ब्रज सुन्दरियों का चरित्र संसार समुद्र से पार उतारने के हेतु ऐसा बड़ा जहाज है कि शुभाशुभ कर्मों की पवन का झोका उसके समीप नहीं आता, नहीं मालूम कि कितने असंख्य जीव उसके प्रभाव से इस जन्म मरण रूपी घोर नदी से पार हो चुके हैं और आगे होंगे।

जब उद्धव जी ने ब्रजनागरियों का ऐसा प्रेम देखा, तो वे अपने ज्ञानयोग को तुच्छ जान कर मथुरा को सिधारे और सब वृत्तांत उन्होंने श्रीनटनागर ब्रजचन्द महाराज से निवेदन किया। अहा हा ! धन्य है गोपियों का प्रेम कि जब आपने यह वृत्तान्त सुना तो यद्यपि हर्ष शोक, सुख दुःख माया और मन से परे हैं, फिर भी उस प्रेम में ऐसी मग्न होगयीं कि जिस प्रेम का प्रवाह हृदय में से उमंग कर नयनों रूपी झरनों से प्रवाहवान् होकर निर्गुण, निराकार, निरञ्जन, निर्द्वन्द्व, निर्मोह निर्लेप नाम और गुणों को बहाता हुआ कपोलों पर होकर वैजयन्ती माला और पीताम्बर को भिगोता हुआ वक्षस्थल से चरण कमलों तक पहुंचा। पीछे जब कृपासिंधु महाराज मथुरा को छोड़ कर द्वारका को पधारे तो उद्धव जीने चरण सेवा न छोड़ी और वे उनके साथ ही गये। जब यादवों को शाप हुआ, तो भगवत् ने कृपा करके इनको ज्ञान का उपदेश किया और भक्ति का वरदान देकर बदरिकाश्रम को भेज दिया।

कुं०—उद्धव ज्ञानी भक्तवर, ब्रज भेजे यदुराय।
ब्रज बालन का प्रेम लखि, गये आप बौराय॥
गये आप बौराय, धन्य ब्रजयुवतिन जाना।
ज्ञान योग से श्रेष्ठ, प्रेम भगवत् का माना॥
भोला ! करि हरि प्रेम, प्रेम के भूखे माधव।
मधव से करि प्रेम, भये माधव सम उद्धव॥

कथा वाल्मीकि श्वपच की।

वाल्मीकि श्वपच भगवद्भक्त ज्ञानवान् थे। जब राजा युधिष्ठिर ने इन्द्रप्रस्थ में राजसूययज्ञ किया, तो भगवत् से पूछा कि यज्ञ पूर्ण हुआ, यह कैसे परीक्षा होगी ? भगवत् ने कहा कि जब हमारा शंख आप से ही बजने लगे, तब समझ लेना कि यज्ञ पूर्ण और सिद्ध हुआ, भगवत् आज्ञा से राजा ने शंख को यज्ञ स्थान में स्थापित किया। पृथिवी भरके जितने ब्राह्मण, ऋषीश्वर ज्ञानवान, राजा और रंक यज्ञ में आये थे, उन सब का दान और मान से सत्कार करके राजा युधिष्ठिर ने उनको संतुष्ट किया और सब को यथायोग्य रीति से भोजन कराया परन्तु शंख न बजा, तब संदेहयुक्त होकर श्रीकृष्ण महाराज से कारण पूछा, उन्होंने कहा कि मालुम होता है कि किसी भक्त ने अपनी झूँठन से इस यज्ञ को सफल नहीं किया, इसी कारण से शंख नहीं बजा, राजा ने विनय किया

कि महाराज, देशों के ऋषीश्वर और ब्राह्मण आये, क्या उनमें कोई आपका भक्त नहीं था? भगवत् ने कहा कि उन ऋषीश्वरों और ब्राह्मणों से पूछना चाहिये। जब राजा ने उन से पूछा तो किसी ने ऋषीश्वर, किसी ने पण्डित, किसी ने वेदपाठी, किसी ने ब्रह्मवादी, किसी ने ब्रह्मेष्ठी इत्यादि अपने को बताया परन्तु भगवद्भक्त किसी ने अपने को न बताया, तब युधिष्ठिर, द्रौपदी, अर्जुन आदि सब ने मिल कर भगवत् से प्रार्थना की कि महाराज, भक्त बतलाइये। भगवत् ने वाल्मीकि ऋषि को बताया। अर्जुन भीमादि उनके घर गये और प्रणाम करके अपने घर आने के लिये विनय किया। वाल्मीकि जी ने प्रथम मना कर दिया परन्तु पीछे बहुत प्रार्थना करने से भगवत् की इच्छा समझ कर वे राजा के घर आये। राजा युधिष्ठिर और भक्त वत्सल भगवान् से बड़े आदर और सन्मान से उनको बैठाया। द्रौपदी आपभोजन का थाल तैयार करके लायी। जब वाल्मीकि जी ने भोग लगाया, तो शंख थोड़ा बजा। भगवत् ने शंख पर छड़ी मारी और कहा कि अब किस लिये थोड़ा बजता है? शंख ने विनय किया कि महाराज, द्रौपदी से पूछना चाहिये, द्रौपदी ने हाथ जोड़ कर विनय किया कि सचमुच मेरा अपराध है क्योंकि जितने भोजन कई प्रकार के अलग २ वाल्मीकि जी के आगे रक्खे, उन सब को एक में मिला कर इन्होंने भोग लगाया। मुझे बुरा मालूम हुआ, मैंने मन में कहा कि भक्त जी भोजनों के स्वाद को नहीं जानते, इसी से सबको मिलाकर खाते हैं। भगवत् ने कहा कि अब आगे भूल कर भी भगवद्भक्तों को बुरा न कहना और उनके आचरणों पर दोष दृष्टि मत करना। पीछे शुद्ध और विश्वासयुक्त चित्त से भोजन कराया और शंख अच्छी ध्वनि से बजा। राजा का यज्ञ पूर्ण हुआ और भगवद्भक्ति का प्रताप संसार भर में फैल गया, भजन भाव की भले प्रकार प्रवृत्ति हुई। सच कहा है "जातपांत पूछे नहिं कोई। हरिको भजे सो हरि का होई"। महाभारत में भगवान् का वचन है कि जो चारों वेद का जानने वाला हो और मेरा भक्त न हो, तो उससे, चाँडाल पतित भी हो और मेरा भक्त हो, वह श्रेष्ठ है और वह ही मेरा प्यारा है, उसी को दान देना चाहिये, वह ही मिलने के योग्य है, मेरे समान उसका पूजन करना उचित है।

कुं०—गाथा सुनि वाल्मीकि की, कौन न होवे भक्त।
हरि प्रिय कोई है नहीं, जैसे प्यारे भक्त॥
जैसे प्यारे भक्त, अन्य प्यारा नहीं दूजा।
भगवत् अपने आप, कीन्ह भक्तों की पूजा॥
भोला! हो हरिभक्त, सुना भक्तों की माथा।
भक्तों के लिख लेख, देख भक्तों की गाथा॥

कथा ज्ञानदेव की।

ज्ञानदेव जी परम भागवत् विख्यात हैं। उनके शिष्य नामदेव और त्रिलोचन जी सूर्य और चन्द्रमा के सदृश हुए। इनका काव्य सरस्वती और गंगा के समान जगत् को पवित्र करने वाला है। ज्ञानदेव के पिता घर को छोड़ कर किसी संन्यासी के पास गये और मेरे स्त्री नहीं है मैं संन्यास लूंगा' यह कह कर संन्यासी हो गये। उनकी स्त्री पीछे पहुंची और संन्यासी से झगड़ा टंटा करके उनको घर ले आई। दूसरे ब्राह्मणों ने उनको जाति से बाहर कर दिया क्योंकि संन्यासी होने के बाद जाति में नहीं मिल सका। इनके तीन लड़के उत्पन्न हुए इनमें बड़े ज्ञानदेव थे। बालपन से ही इनकी श्रीकृष्ण महाराज के चरण कमलों में प्रीति थी। जब यह ब्राह्मणों के पास वेद पढ़ने

गये तो किसी ने इनको न पढ़ाया क्योंकि जो जाति से बाहर हो, उसे वेद पढ़ने का अधिकार नहीं है। ज्ञानदेव जी ने कहा कि वेद के पढ़ने से ही ब्राह्मणत्व सिद्ध नहीं होता, वेद तो पशु भी पढ़ सकते हैं। सिवाय इसके भगवत् से अधिक वेद को कोई नहीं जानता और भगवत् सर्वत्र विद्यमान् हैं। यह कह कर उन्होंने एक भैंसे को वेद पढ़ने की आज्ञा दी। भैंसा वेद पढ़ने लगा और कई शाखा उसने ऐसी शुद्ध वाणी से पढ़ी कि ब्राह्मणों को उनका स्मरण भी न था। यह देख कर ब्राह्मणों को भगवद्भक्ति में विश्वास हुआ और वे सब इनके चरणों में गिरे। ज्ञानदेव ने उनपर दया की और भगवद्भक्ति की शिक्षा दी।

कुं-भक्तों की महिमा अगम, पाय सके को पार।
भैंसा भक्त सुवाक्य सुन, किया वेद उच्चार॥
किया वेद उच्चार, विप्र सुन कर चकराये।
ज्ञान देव कूं पूज, क्षमा अपराध कराये॥
भोला! सेवा छोड़, विषय भोगासक्तों की।
तन मन से कर सेव, सदा साहर भक्तों की॥

कथा लड्डू स्वामी की।

लड्डू स्वामी परम भागवत भगवत् रंग में रंगे हुए और सब में उसी भगवद्रूप का चिन्तवन करने वाले थे। सुख दुःख से छूट कर जहां तहाँ विचरते रहते थे। संयोग वश ऐसे देश में पहुंचे कि जहां भगवद्भक्ति का नाम तक भी नहीं था और वहां के लोग दुर्गा की प्रसन्नता के लिये मनुष्य का बलिदान दिया करते थे। लड्डू स्वामी को मोटा, ताजा, चिकना देख कर काली की भेंट के लिये लेगये। भगवत् अपने भक्तों की सहाय के लिये सदा साथ रहते हैं, सिवाय इसके लड्डू स्वामी की दृष्टि में दुर्गा भी भगवद्रूप थी, इसलिये दुर्गा की प्रतिमा फट गयी और वह विकराल रूप से प्रकट हुई और तलवार से सब दुष्टों का वध करके भगवद्भक्त के दर्शन से अति प्रसन्न हुई। भगवद्भक्ति का प्रताप दिखाने के लिये दुर्गा ने उनके सामने नृत्य किया और चरणों में दण्डवत् किया। यह वृत्तांत दुर्गा महारानी के विश्राम और सहाय का वहाँ के लोगों ने देखा तो सब ने भगवद्भक्ति अंगीकार की। तब से वहां भगवद्भक्ति का अच्छी तरह प्रचार हुआ।

कुं-लड्डू स्वामी भगवत, रंगे भक्ति के रंग।
सब में भगवत् देखते तजा, सभी का संग॥
तजा सभी का संग, भक्त दुर्गा कूं कीन्हा।
पीछे सारा देश, ईश संमुख कर दीन्हा॥
भोला! भज श्रीकृष्ण, नहीं कोई मत कामी।
रंगना भगवत् रंग, रंगे ज्यों लड्डू स्वामी॥

कथा नारायणदास की।

नारायणदास उत्तर देश में बदरिकाश्रम के निकट परम भागवत नारायण रूप हुए हैं। यह भक्ति और भजनमें अत्यन्त निष्ठ थे। मनतो भगवत् स्वरूप के चिन्तवन में मग्न रहता था और मुख से अनुक्षण भगवच्चरित्र और नाम लेते थे। भगवद्भक्त के प्रयत्नक, गुप्त चरित्र और भाव के कहने वाले एक ही थे। भक्तों की सेवा भगवत् के सदृश किया करते थे। बदरिकाश्रम से दर्शन के हेतु मथुरा जी में आये और केशवदेवजी के दरबार में रहने लगे। एक दिन सोचा कि जो लोग केशवदेव जी के दर्शन को आते हैं, उनका मन जूतियों की चिन्ता में रहता होगा। ऐसा कर जूतियों की रखवाली करना आरंभ करदिया। उनके प्रताप को कोई जानता नहीं था इसलिये उनको इस सेवा करने से नहीं रोका। एकबार एक दुष्ट बड़ी भारी गठरी उनके

शिरपर रखवाके ले चला राह में किसी ने पहिचान कर इनको साष्टांग दण्डवत् किया, तब वह दुष्ट लज्जित होकर अपराध क्षमा कराने लगा। आपने कहा कि इस शरीर से किसी का काम निकल जाय, यह ही लाभ है, तुम शोच मत करो। तब वह रोने लगा और चरणों में गिर पड़ा। नारायणदास जी ने उस को भगवद्भक्ति का उपदेश देकर एक क्षण में उसे भगवद्भक्त बनादिया और सब पातकों से निर्मल करदिया। हे मंसाराम! निश्चय भगवद्भक्तों को सब सामर्थ्य है, जो चाहें, सो कर दिखलावें। यदि किसी को यह शंका हो कि ऐसे अपराधी पर ऐसी कृपा किसलिये की, उसका उत्तर यह है कि यह शुभदर्शन और साधुता का लक्षण है, जैसे मेघ की दृष्टि गाली देने वाले और स्तुति करने वाले पर समान है, इसी प्रकार भगवद्भक्तों की कृपा सबपर समान होती है।

कु०—नारायण का रूप ही, श्री नारायणदास।
मधुरापुरी में आपके कुछदिन किया निवास॥
कुछ दिन किया निवास, करी जीवन की रक्षा।
मिथ्या देहाध्यास, दीन्ह सब को यह शिक्षा॥
कृपा दृष्टि कर दुष्ट, कीन्ह सन्मार्ग पायण।
भोला कहँ दीं सीख नित्य ही सब नारायण॥

कथा किन्हर दास की

किन्हरदास परम भागवत् भजनानन्द थे। भगवद्भक्तों की कृपा से निज भगवत् स्वरूप की माधुरी का उनको लाभ हुआ था। गुरु के शरण होकर भगवद्भक्ति का स्वरूप भले प्रकार जान कर इन्होंने संसार के सब धर्म छोड़ दिये थे वस्तु अवस्तु, सत्यासत्य, ज्ञानाज्ञान, सारासार, को विचार कर सारे जीवों को भगवद्रूप निश्चय किया था। कहने मात्र यह संसार में थे वस्तुतः संसार से अलग थे। कभी किसी से कठोर दुर्वाक्य नहीं कहा, भक्तों और भगवत् के चरित्र सदा कहा करते थे।

दो०:—सब धर्मों को छोड़ कर, भजो एक विश्वेश।
भोला! किन्हर दास जी, देते यह उपदेश॥

कथा पूर्णदास की।

पूर्णदास जी की महिमा कौन वर्णन कर सका है! इन्होंने हिमाचल पर्वत पर गंगाकिनारे योग के प्रकार से समाधि लगा कर भगवत् के ध्यान में मन लगाया, रीछ व्याघ्रादि का कुछ भय न किया, प्राणायाम की विधि से प्राण को जीत कर जीवन मरण अपने वश में कर लिया था। निर्वाण उपासना के साक्षी, शब्द और पद उनके बनाये हुए बहुत हैं और विख्यात हैं।

दो०—भोला! योगाभ्यास से मिलता पद निर्वाण।
देता शिक्षा है यही, पूर्णदास व्याख्यान॥

भक्ति

[ले० श्री राजाराम जी खरे "लहरी"]

भक्ति चरणों में लखी, भली, भली केवट की;
पांव पखुराये जब जनक-राज दूजे हों।
भक्ति-रस भीगे शबरी के झूठे मीठे बेर;
राम जब खाये जब कौशिला के दीन्हें हों॥
भक्ति ही तें मोहन सुदामा से भिखारिन को;
दीन्हीं अससम्पति कुबेर भूमि ही के हों।
भक्ति दीजे भगवन् भूल्यो "राजाराम खरे";
भक्त इत उत सेवक तिहारो हों॥

प्रतीक्षा ।

[ले० श्री पं० रेवाधरजी पांडे]

कब की खड़ी हूं, प्रियतम ! पुकारते-पुकारते थक गयी, जीभ में छाले पड़ गये, पर तुम न आये!

इस निर्जन वन में अकेली मैं हूं। चारों ओर अन्धेरा ही अन्धेरा छा रहा है। तरङ्गिणी का कलकल-रव भी मन्द पड़ता जाता है। ज्ञात पड़ता है, हवा भी अपनी अठखेलियां बन्द कर सोने जा रही है। सामने के काले भयावने गिरि शिखरों की ओर तो आंख खोल कर देखा भी नहीं जाता, बड़ी सनसनाहट है। पेड़ पर बसेरा लेने वाली चिड़ियों के परों की फड़फड़ाहट ही रुक रुक कर इस घोर सन्नाटे को चीरती है। इसी से थोड़ा बहुत शीरत बंधा है. नाथ ! अञ्चल से ढका हुआ यह निस्नेह दीपक कब तक टिमटिमायेगा ?

पैर कांप रहे हैं, हृदय धक २ कर रहा है, पलकें भी भारी होती जाती हैं, शरीर पसीज उठा है, गला रुंध आया है, बड़ी घबड़ाहट मालूम होती है। क्या करूं, क्या न करूं ? न खड़ा ही रहा जाता है न लोटते ही बनता है। लौटूं भी तो कहां किस ओर ? अब न मेरा कहीं घर है न द्वार, न सखी है न सहेली, न स्वजन है न परिजन, न कुल है न कानि। फिर किधर जाऊँ कहां रहूं ? पूर्व पश्चिम का भी तो ज्ञान नहीं। नाथ ! तुम्हारे मन में ओर छोर है क्या ? यह देखो, दीपक भी बुझा चाहता है।

क्या यह शिला जिस पर मैं खड़ी तुम्हारी बाट जो रही हूं मोम की तो नहीं है ? यदि नहीं, तो पिघलती क्यों जाती है ? तारे क्यों रो रहे हैं ? कौन कहता है कि पत्तियों पर ओस की बूंदें झिल-मिला रही हैं। यह तो इन्हीं तपते तारों के आँसू हैं। काली साड़ी पहने यह अंधेरी रात मुझ निराशा में डूबी हुई अभागिनी का दुःख बटाने आई है। देखूं बेचारी कब तक साथ देती है ! स्नेह-मयी प्रकृति का हृदय सचमुच ही बड़ा कोमल है। यह इतनी दया न दिखाती तो मैं किस के आगे अपना रोना रोती ? पर तुम्हें तनिक भी दया न आयी, कठोर हृदय !

यह प्रतीक्षा है, या परीक्षा ? प्रतीक्षा ही है परीक्षा किस बात की होगी ? तुम अनन्त, तुम्हारी प्रतीक्षा भी अनन्त ! ठीक है न ? कुछ तो कहो ! किस से बात कर रही हूं ? क्या तुम सुनते हो ? यदि हाँ, तो अपनी मोहनी झलक क्यों नहीं दिखाते, मोहन !

लो दीपक गया ! आशा भी गई। अब भी दौड़ आओ, प्रियतम ! देर करने से प्राण पखेरू भी उड़ जायंगे प्राणेश !

बुद्धदेव

[रचयिता श्रीमती ब्रजकुमारी 'विदुषी' आश्रम]

सुरराज छके ये लखे जब वैभव,
श्रीनभ चूमत ऊँची अटारी।
रतिरंग पल्यो नव अङ्ग अनंग,
छक्यो लखि के सुकुमार अपारी॥
जब आतम ज्ञान लहै मनरे !,
तब कौन चहे जग सम्पदा सारी।
बोधित हो "ब्रज" बुद्ध चले,
तज कीर्ति करी श्री श्री सोनारी॥

ईश्वर क्या है और उसका अस्तित्व कैसे अनुभव हो सकता है* ?

(महात्मा गांधी)

संसार में एक ऐसी अपूर्व शक्ति विद्यमान है जो प्रत्येक वस्तु का संचालन करती है। यद्यपि मैं उस शक्ति को देख नहीं सकता पर उसका अनुभव करता हूं। वह ऐसी छुपी हुई शक्ति है जो अपना स्वयं ही अनुभव करा देती है। वह ज्ञान प्राप्त कराती है कि ईश्वर भी कोई चीज है।

साधारणतः लोग यह नहीं जानते कि शासन कौन करता है और वह [ईश्वर] क्यों और कैसे शासन करता है ? फिर भी लोग समझते हैं कि ऐसी कोई शक्ति अवश्य है जो हमारे ऊपर शासन करती है। कुछ वर्ष पूर्व मैंने मैसूर में भ्रमण किया और मुझे कुछ गरीब देहातियों से भेंट करने का अवसर मिला। पूछने पर मुझे मालूम हुआ कि वह यह नहीं जानते कि मैसूर में शासन कौन करता है ? उन्होंने केवल इतना उत्तर दिया–'कोई देवता शासन करता है।' यदि उन लोगों को अपने राजा का भी ज्ञान नहीं है तो इस में कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि सम्राटों के सम्राट् परमात्मा का ज्ञान मुझे न हो पर जैसे मैसूर के देहाती यह जानते हैं कि उन पर कोई राजा शासन अवश्य करता है वैसे ही मैं भी यह अनुभव करता हूं कि प्रत्येक वस्तु का संचालक कोई अवश्य है।

"वह कोई अन्धा कानून नहीं है क्योंकि कोई भी अन्धा कानून जिवित प्राणियों पर शासन नहीं कर सकता। वह कानून क्या है ? ईश्वर ! कानून और कानून का रचने वाला दो नहीं एक ही हैं। कानून वा कानून के रचियता के अस्तित्व से इनकार नहीं कर सकता क्योंकि मैं उस [ईश्वर] के सम्बन्ध में कम जानता हूं। जैसे पृथ्वी के राजा का अस्तित्व न मानने से मुझे कोई लाभ नहीं हो सकता उसी प्रकार ईश्वर का अस्तित्व न मानने से उसकी प्रतिक्रिया में कोई अन्तर नहीं डाल सकता ईश्वर का अस्तित्व मान लेने से जीवनयात्रा सुलभ हो जाती है। मैं यह स्वीकार करता हूं कि मेरे आस पास जो भी चीजें हैं सभी परिवर्तनशील हैं पर उन सब का परिचालन करने वाली ऐसी एक वस्तु है जो अपरिवर्तनीय है। वही सब को रचती है और फिर बिगाड़ देती है पर दुबारा फिर उसी प्रकार रचनाकर देती है। वह वस्तु ईश्वर है। जिसे मैं ज्ञान द्वारा देख सकता हूं, वह और कुछ नहीं, केवल ईश्वर है। मृत्यु में जीवन है, असत्यता में भी सत्य है, अन्धकार में प्रकाश है। इसलिये मैं सोचता हूं कि ईश्वर जीवन, सत्य और प्रकाश है। वह प्रेम है, वह महान उत्तम है। वह हृदय का नियन्त्रण करता है। उसके प्रत्येक कार्य में उसकी झलक है। हमारे पाँच ज्ञान हैं जो भी प्रकाश दे सकते हैं उस से भी अधिक प्रकाश उसकी झलक अनुभव करने में है। हमारी पाँचों ज्ञानेन्द्रियां जो हमें प्रकाश देती हैं–वह चाहे हमें कितनी ही वास्त-

---

*कोलंबिया ग्रामोफोन कम्पनी ने महात्मा जी से रिकार्ड भरने का आग्रह किया। यह महात्मा जी का उस समय का उपदेश है।

(सम्पादक)

विक मालूम पड़े पर वह नकली भी हो सकती है। जब हमें ज्ञानेन्द्रियों से भी अधिक कुछ अनुभव होता है तो वह उस शक्ति का ही अनुभव होता है पर यह अनुभव वही कर सकता जो अपने में ईश्वर का अस्तित्व मानता है। उसका अस्तित्व सभी देशों और सभी वायुमण्डलों में है। इस से इनकार करना अपने ही अस्तित्व से इनकार करना है। इस के अस्तित्व का अनुभव विश्वास से ही होसकता है और विश्वास सहज में उत्पन्न नहीं होता पर इसका एक मात्र उपाय संसार के आध्यात्मिक शासन में विश्वास करना है अर्थात् सत्य और प्रेम के कानून पर विश्वास करना। सत्य और प्रेम के विपरीत जो भी हो उसे न मानना और अपने विश्वास के मतानुसार कार्य करना सब से सुगम उपाय है। मैं मानता हूं कि ईश्वर का अस्तित्व तर्क से सिद्ध नहीं किया जा सकता। विश्वास ही तर्क है। मैं जो भी कह रहा हूं वह असम्भव नहीं है।

"मैं बुराई को मानता हूं। मेरा विश्वास है में उसने ही बुराई फैलाई पर उस में स्वयं कोई बुराई नहीं और वह उस से दूर ही है। मैं जानता हूं कि जब तक मैं अपने प्राणों तक की भी बलि देकर बुराइयों का सामना करने को तैयार नहीं रहूंगा तब तक मैं ईश्वर को नहीं जान सकता मैंने अपने निज के अनुभव से ऐसा ही ज्ञान प्राप्त किया है। जितना ही मैं अपने को अधिक २ गरीब बनाता जाता हूं उतनाही अधिक ईश्वर मुझे नजदीक दिखलाई देता है। जब मेरा विश्वास हिमालय की भांति अचल और बर्फ की भांति स्वच्छ होजावेगा तब मैं ईश्वर के निकट अधिक पहुंच सकूंगा।

जब रिकार्ड तैयार होगया तो म० जी ने भी सुना और अपनी आवाज रिकार्ड में सुनकर प्रवाहित हुये। इस रिकार्ड से जो लाभ होगा उसका अधिकांश भाग अ० भा० चर्खासंघ को मिलेगा।

साधारण- योग

[ले० श्री जमुना प्रसाद जी श्रीवास्तव]

यद्यपि देश, काल, जाति, समाज और संस्कार के भेद से धर्म और उपासना भिन्न २ हैं तथापि सब धर्मों का मूलसूत्र एक ही ईश्वर है। वही संपूर्ण सम्प्रदायों के उपास्य देव, आश्रय दाता, जगद्गुरु, जगत्-पिता, प्रधान शासक, सत्य, दया, प्रेम, न्याय, ज्ञान, मंगल आदि के अक्षय भंडार, और संपूर्ण गुणों के पाताल तोड़-कूप हैं। उन्हीं में अटल विश्वास रखना और कि संसार उन्हीं की भक्ति के द्वारा जिस समय हृदय में कर्त्तव्य-बुद्धि जाग्रत होती है उस समय बुरे कार्यों से घृणा होने लगती है और ईश्वर प्रीति कर कार्यों में मन लगने लगता है। इसी कर्त्तव्य बुद्धि को जाग्रत करने के हेतु सर्व शक्तिमान जगदीश्वर ने योग-विधान की रचना की है। जिसका मुख्य उद्देश्य दुश्चरित्र से बचाना और ईश्वर-प्रीतिकर कार्यों में लगाना तथा परमानन्द की प्राप्ति

करना है:-

'जग मगात जग ज्योति जिहि, जल थल सकल अनन्द।
योग जुगत सो पाइये, पूरण परमानन्द'॥'

प्रत्येक देश धर्म और समाज के स्त्री पुरुषों का प्रथम कर्त्तव्य, प्रथम साधन योगाभ्यास ही है। इसमें कुछ खर्च नहीं करना पड़ता और न घर बार ही छोड़ने की आवश्यकता होती है:-

निसि वासर वस्तु चित्तग्रहि के,
मुख सांचु हिये करुना धनु है।
अघ निग्रह संग्रह धर्म कथानि,
परिग्रह साधुनि को गनु है॥
कहि 'केशव' भीतर जोग जगे,
अति बाहेर भोगनि सो तनु है।
मन हाथ सदा जिनके,
बन ही घरु है घर ही बनु है॥
मन की गति निज हाथ है, धन्य 'रमा' वह लोग।
बाहिर तन है भोग हित, भीतर जागत जोग॥
भीतर जागत जोग, धर्म की कथा सुहावे।
सङ्ग साधु को करें, झूठ कबहूं नहीं भावे॥
बन उपवन पर माहिं, नहीं इच्छा है धन की।
करुणा को उर बास, हाथ जिनके गति मन की॥

(२)

मन को वश में करना ही श्रेयस्कर है:-

'नाम भजो मन वश करो, यही बात है तन्त।
काहे को पढ़ पच मरो, कोटिन ज्ञान ग्रन्थ॥
मन गोरख, मन गोविन्दा, मन ही औघड़ होय।
जो यह मन राजे बतन कर, आपहि कर्ता होय॥
मन ही को परबोधिये, मन ही को उपदेश।
जो यह मन वश आवही, सिद्ध होय सबदेश॥

परन्तु यह बड़ा चंचल है। बन्दर के समान इस टहनी से उस टहनी पर भटकता और अठ खेलियां करता फिरता है बड़ा नादान है। सुन्दर वस्तु देखते ही मचल जाता है। एकबार अर्जुन सा ज्ञानी भी व्याकुल होकर कह उठता है:-

चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्॥ ६।३४॥

भगवान् श्रीकृष्ण जी मन की ऐसी दुर्जेयावस्था को स्वयं स्वीकार करते हैं:-

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौंतेय वैराग्येण च गृह्यते॥ ६।३५॥

प्रकाश की गति एक सेकन्ड में एक लाख छयालीस हज़ार मील है परन्तु मन की गति इससे भी अधिक है:-

इस मन को वश में करने का कार्य बड़ा विकट है:

'पढ़ना लिखना चातुरी, यह तो बात सहल।
काम दहन, मन वश करन, यही बात मुश्किल॥
सिंह सरीके पशुओं को, नर लेता जीत चलाकर तीर।
पर मन को निज वश में लाना है सचमुच टेढ़ी खीर॥

वृज-गोपांगनाओं ने अपनी विरह-वेदना इस प्रकार वर्णन की है:-

'श्याम तन, श्याम मन, श्याम ही हमारो धन।
आठों याम ऊधो हमें श्याम ही सों काम है।
श्याम हिये श्याम जिये, श्याम बिन कैसे जियें॥
आंधरे की लाकड़ी अधार हमें श्याम है॥
श्याम रति श्याम गति, श्याम ही प्रताप मति,
श्याम ही के श्याम रंग, रंगा हिया धाम है।
बावरे भये हो, ऊधो! श्याम को भुलाने आये,
साधें योग कैसे हम? रोम रोम श्याम है॥

ऊधो जी से कहा था:-

'वैराग जोग कठिन, ऊधो! हम न करब हो।
जमुना जल अति गंभीर तन मन नहिं धरत धीर,
कृष्ण! विरह लागि बरूंक डूब मरबहो॥
वैराग जोग कठिन, ऊधो! हम न करब हो॥'

मन के भीतर जो लहरें उठती हैं उन्हें चित्त की वृत्ति अथवा धारा कहते हैं। धाराओं को एक केन्द्र पर स्थापित कर देने से मन वश में आजाता है। महर्षि पातञ्जलि ने भी कहा है:-

'योगश्चित्त वृत्ति निरोधः'

सूर्य की किरणें प्रत्येक स्थान पर पड़ती हैं तो भी उनमें किसी वस्तु को जलाने की शक्ति नहीं होती। परन्तु जब यही किरणें आतशी शीशे द्वारा एक केन्द्र पर स्थापित कर दी जाती हैं तब उनमें वस्तु को जला डालने की शक्ति आ जाती हैं। मन की भी यही दशा है। जब तक वह डांवा डोल रहता है तब तक उससे कुछ करते नहीं बनता परन्तु जब उसे चहुं ओर से हटा कर एक केन्द्र पर स्थापित कर देते हैं तब उसमें अनुपम और अलौकिक शक्ति आ जाती है। वह जो चाहता है सो कर सकता है। उस समय जो कुछ इच्छा की जाती है वह अवश्य पूर्ण होती है। मन की वृत्तियों को रोकने तथा उन्हें एक स्थान पर स्थापित करने के मुख्य उपाय यह हैं:-

१. समय के यथोचित विभाग करके प्रतिदिन प्रत्येक कार्य को नियत समय पर करे। इस प्रकार जब काम हो तब मन को काम में लगावे और जब काम न हो तब उसे परम श्रेष्ठ महामंत्र:-

'हरे राम ! हरे राम ! राम ! राम ! हरे ! हरे !
हरे कृष्ण ! हरे कृष्ण ! कृष्ण ! कृष्ण ! हरे ! हरे !
ओंम ओंम ! सोहं-सोहं ! शिव-शिव !
अल्लाहु-अल्लाहु ! गौड-गौड !

इत्यादि जो जिसका इष्ट हो, उसमें लगादे।

(१) वाणी से
(२) मन से, और
(३) संपूर्ण शरीर से

होना चाहिये। इसका मन पर अधिक प्रभाव पड़ता है:-

जहां वास वासा रहे पंछी रहै न कोय।
जा पद प्रेम प्रकाशिया, मन क्यों विकलप होय॥'

(२) त्राटक और शांभवी मुद्राओं का अभ्यास करे। विधि यह है जब तक आंसू न गिरें तब तक पलक मारे बिना किसी सूक्ष्म वस्तु को देखता रहे। यह त्राटक मुद्रा है।

भ्रूयुगल अर्थात् दोनों भ्रुवों के मध्य में अथवा नासिका के अग्रभाग में दृष्टि को स्थिर करके परमात्मा का दर्शन करे। यह शांभवी मुद्रा है मेस्मरेजिम के विद्वानों ने इनका स्पष्टीकरण इस प्रकार दिया है:-

एक चौकोन कागज पर काली स्याही से रुपये बराबर बिन्दु बना, उसे डेढ़ इंच की उंचाई पर लटकादे। और डेढ़ फुट के अन्तर पर बैठ कर बिना पलक मारे बिन्दु के बीचों बीच (पांच मिनिट से लगा कर तीस मिनिट तक) दृष्टि जमा कर देखे। दो तीन दिन में बिन्दु के आस पास प्रकाश की झलक दिखाई देती है इस प्रकाश को एकत्र कर बिन्दु के मध्य में स्थापित कर बिन्दु के सफेद हो जाने का संकल्प करो इस विचार के दृढ़ होते ही बिन्दु कभी सफेद कभी काला और कभी प्रकाशित दिखाई देता है। परन्तु पूर्ण अभ्यास हो जाने पर सफेद ही दृष्टि गोचर होता है। और उसमें आश्चर्य कारक दृश्य दिखाई देते हैं।

इस प्रकार त्राटक और शांभवी मुद्राएँ सिद्धि होते ही मन की एकाग्रता बढ़ कर रक्षा शक्ति, स्मरण शक्ति और आज्ञा शक्ति प्रबल हो जाती हैं और नेत्रों के रोग नष्ट होकर, दृष्टि दिव्य होती है:-

जिनको शांभवी मुद्रा आती है वे निःसन्देह मूर्तिमान, ब्रह्मस्वरूप हैं। इस बात को महादेव जी

ने तीन बार सत्य ! सत्य ! सत्य ! कह कर निरूपण किया है:-

सत्यं सत्यं पुनः सत्यं सत्यमेतद् महेश्वरः ।
शांभवीं यो विजानीयात्स च मुक्तश्च नान्यथा ॥

भगवान श्रीकृष्ण जी ने अर्जुन को ऐसी ही दिव्य दृष्टि देकर अपने वास्तविक रूप का दर्शन कराया था:-

'न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा ।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम्' ॥

त्राटक का अभ्यास और महामंत्र का जप दोनों एक साथ करने से बड़ा आनन्द आता है। जीव परमज्ञानी और जीवन मुक्त हो जाता है। कहा भी है:-

जो योग साधें और ओम् अराधें,
उन्हीं को करती प्रणाम दुनियां ।'

एक समय देवताओं के वैद्य अश्विनी कुमार पिंगल शास्त्र पढ़ने की कामना से, शेषनाग जी के समीप गये शेषनाग जी ने कहा 'कुमार जी' ! इस समय मेरी आंख में बड़ी पीड़ा हो रही है आप इसे दूर करें तब मैं पिंगल पढ़ाऊंगा। अश्विनी कुमार ने सर्व श्रेष्ठ त्रिघात नाम की औषधि उनकी आंख में आंज दी परन्तु पीड़ा कम होने के स्थान में और भी अधिक बढ़ गई। इसी बीच में नारद जी आपहुंचे। उन्होंने अश्विनी कुमार से कहा मृत्युलोक में एक वैद्य रहता है। उसके पास जाओ वह तुम्हें इस रोग की औषध बतायेगा। अश्विनी कुमार ब्राह्मण का वेष धारण कर वैद्य के समीप गये। अपने आने का कारण बता, आंख की पीड़ा दूर करने का उपाय पूछा। वैद्य ने कहा महाराज ! त्रिघात से बढ़ कर अन्य कोई औषधि तीनो लोकों में भी नहीं है परन्तु आपने भूल की है। शेषनाग जी के दो सहस्र नेत्र हैं उन सबों को मिलवा कर जिस आँख में पीड़ा होती हो उसे ही खोल कर त्रिघात आंज दो परमेश्वर चाहेंगे तो उसी समय पीड़ा दूर हो जायगी। अश्विनी कुमार ने लौट कर ऐसा ही किया। शेषनाग जी के संपूर्ण नेत्र मुंदवा कर जिस नेत्र में पीड़ा होती थी उसे ही खोल कर त्रिघात आंज दिया। औषधि के प्रभाव से उस नेत्र से भल-भल जल बहने लगा और तत्काल उस नेत्र की पीड़ा दूर हो गई। इसी प्रकार चित्त की संपूर्ण वृत्तियों को एक केन्द्र पर स्थापित करके महामंत्र-जप रूपी औषधि सेवन करने से निःसन्देह परमानन्द की प्राप्ति होती है। ग्रहस्थ अपने कर्त्तव्य का पालन करते हुये भी इसका अभ्यास कर सकते हैं। यह सर्वोत्तम और सहज साधन है। सहज की व्याख्या कबीर साहिब ने इस प्रकार की है:-

सहज सहज सब कोई कहे, सहज न जाने कोय ।
जा सहजें साहिब मिलें, सहज कहावे सोय ॥'

इसलिये प्रत्येक मनुष्य को स्त्री हो या पुरुष, बालक हो या वृद्ध प्रति दिन दृढ़ निश्चय और अचल निष्ठा से इसका अभ्यास करना और यथानु यत्न करते ही रहना चाहिये:-

'करत करत अभ्यास के जड़ मति होत सुजान ।
रसरी आवत जात ते सिल पर परत निशान ॥'

एक न एक दिन अवश्य ही मनोकामना पूर्ण होगी। यही अष्टांग योग है। इसके आठ अंग हैं। वे यह हैं:-

यम नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि।

अलौकिक धन क्या है ?

[ले० श्री पं० गोपालप्रसाद जी शर्मा]

जगत् में ऐसा कौनसा धन है कि जिसको पाने पर फिर और कोई धन पानेकी इच्छा नहीं होती, ! जिसके प्राप्त होने पर जीवन प्रीति का पवित्र आलय होजाता है, जिसका अधिकारी होजाने पर फिर मनुष्य मनुष्य नहीं रहता किन्तु देव दुर्लभ सुधापान करके वह देवत्व को प्राप्त हो जाता है ! कहो तो भाई ! वह धन कौनसा है कि जो समझने की चेष्टा करने पर सहज में समझा नहीं जासका, जिसकी इच्छा होते ही जिस का एक ही अंग जान जाने पर ही हृदय, मन और प्राण प्रेम से गद्गद हो उठते हैं। बतासकते हो भाई ! वह धन कौनसा है ?

जिस अपार्थिव धन के प्राप्त होते ही स्पर्श-मणी को भी फेंक देने की इच्छा होती है। पृथ्वी के मणि माणिक्य, हीरा, मुक्ता, स्वर्णमुद्रा, रौप्यमुद्रा जिस धन के साथ तुलना करने पर ये तृणवत् जान पड़ते हैं । कह सके हो भाई वह धन कौनसा है? जान पड़ता है जो महात्मा इस अलौकिक धन के अधिकारी हैं वही इस धन को बता सके हैं समझ सके हैं-समझा सके हैं। हम तुम क्षुद्र जीवों की शक्ति नहीं है जो इस धन को जान सकें इसी से फिर पूछते हैं कि वह देव दुर्लभ धन क्या है !

विचार के बताओ भाई ? वह धन कौनसा है कि जिस के पाने की लालसा होने पर राज्य, धन ऐश्वर्य्य, स्त्री, पुत्र, परिवार, त्याग करके वन गमन में भी संकोच और आनेक नहीं होता। जिसके एक अंशमात्र लाभ होने पर भक्ति प्रिय भगवान् प्रेम रज्जू में बांध लिये जाते हैं जिसका तिनका मात्र हस्तगत होने पर भक्ताधीन भगवान द्वारपाल बन जाते हैं। वह धन है क्या ?

कहो भाई ? वह धन कौनसा है कि जिसके अधिकारी होने पर दारिद्र भंजन हरि दरिद्र के तंदुल कण ग्रहण करके उसके सब मनोर्थ पूर्ण करते हैं। जिसके अधिकारी होने पर कोसों का मार्ग पल मात्र में तय करके श्रीभगवान ब्राह्मण बालक की साक्षी देने जाते हैं। जिसके एक ही अंग लाभ होने पर चांडाल होते हुए भी उसे प्रेमा-लिंगन दान करके चरितार्थ करते हैं।

सोच के कहो भाई ! वह धन कौनसा है कि जिसके अधिकारी होने पर प्रह्लाद की देह अग्नि में भस्म नहीं हुई थी। पर्वत से गिरा देने पर भी किसी अंगका बाल बांका नहीं हुआ था समुद्र में डालदेना पर भी शरीर का कुछ नहीं बिगड़ा था। कहो भाई वह धन कौनसा है कि जिस धन के अधिकारी होने पर मृत संजीवनी शक्ति प्राप्त हो जाती है। जिस धन के अधिकारी की चरण रेणुसे महाव्याधि दूर हो जाती है। जिस धन के अधिकारी होजाने पर "हे हरि पद्मपलाश लोचन" इन शब्दों के कहते ही श्रीभ-गवान् स्थिर नहीं रह सके। वे तुरंत आकर अधि-कारी की मनोकामना पूर्ण कर देते हैं।

उस धन की अपार महिमा करने की शक्ति लेखनी में नहीं है। अब सुनिये ! वह धन और कुछ नहीं है। वह धन केवल भक्ति का परम धन है। ईश्वर भक्ति हरिभक्ति, रसराज श्रीकृष्ण के चरणों में आत्मसमर्पण यही सब उसके नाम हैं। इस

भक्ति धन को यदि अच्छे प्रकार जानना है तो आप वैष्णव शास्त्र का अध्ययन कीजिये सच्चे साधु का सत्संग कीजिये। भगवत्कृपा और एकांतिक लालसा हुए बिना इस धन का एक अंश भी कोई कभी नहीं पासका। प्रकृत सुखपवित्र आनन्द और शांति लाभ करने की यदि इच्छा हो तो भक्ति तत्व की आलोचना करने का एकान्त प्रयोजन है। जिस हृदय में यह भक्ति देवी विराजमान होजाती है वही हृदय माधुर्य्यमय श्रीराधावल्लभ का लीला निकेतन बन जाता है। श्री भगवान् ने नारदजी से क्या कहा था? सुनिये।

नाहं तिष्ठामि वैकुंठे, योगिनां हृदये न च॥
मद्भक्ता यत्र तिष्ठन्ति, तत्र तिष्ठामि नारद॥ १॥

इस प्रकार जो भक्तिरत्न के अधिकारी हैं वे चांडाल कुल में जन्म ग्रहण करने पर भी श्रेष्ठ मानव अथवा मनुष्य देह में देवता हैं। उनके सन्मान और मर्य्यादा बढ़ाने को शास्त्र में कहा गया है कि:-

"न शूद्रा भगवद्भक्ता स्तेऽपि भागवतोत्तमा"।

अर्थात् भगवद्भक्त शूद्र नहीं है। भागवतोत्तम है:-

नमे भक्तश्चतुर्वेदी-भक्तः श्वपच प्रियः।
तस्मै देयं ततो ग्राह्यं-स च पूज्यो यथा ह्यहम्॥ १॥

अर्थात्- अभक्त ब्राह्मण मेरा प्रिय पात्र नहीं है। भक्त चांडाल भी हो तो वह मुझे प्रिय है इसलिये नीच कुल जात होते हुए भी वह दान के उपयुक्त पात्र है। और उसका दिया हुआ दान ही मुझे प्राप्त होता है। इसलिये मेरे समान ही मेरे भक्त की पूजा करना चाहिये।

मद्भक्ता पूजाभ्यधिका, सर्व भूतेषु संमति।
सर्वेभ्यश्च चेष्टा च, वचसा सद् गुणैरणम्॥ १॥

अर्थात्-हे उद्धव? मेरी सेवा में आस्था शाष्टाङ्ग प्रणाम-मेरे विषय में हृदय से वाक्य की चेष्टा-मुझे सब कर्म समर्पण-संपूर्ण वासना का त्याग-सब ही वृथा हैं। केवल मेरे भक्त की पूजा ही सर्व श्रेष्ठ है। यही मेरा मत है।

श्रीभगवान् भक्ति धन के कारण भक्त के लिये। भक्त के सन्मान के लिये कभी भी संकुचित नहीं होते हैं। इस बात के जीवित उदाहरण हमारे शास्त्र के प्रति पत्रों में प्रति पंक्तियों में लिखे हुए हैं। हम मंदमति इससे आगे और क्या कह सकते हैं?

अब भक्ति रसाश्रयी का सुख किस प्रकार है सो कहते हैं। नारद जी ने कहा है-"मूक स्वादन वत्" जिसने इस मधु का पान किया वह गूंगे की न्यांई होजाता है। उत्तर कौन देगा। वह तो देव दुर्लभ सुधा पान करके मतवाला होगया है उससे उत्तर कैसे मिल सकेगा! किन्तु तौभी ब्राह्मण के चंद्र ग्रहण आशा की न्यांई हमने भक्ति के विषय में यहां कुछकहा है। भक्ति का स्थान कितना उच्च है सो सुनिये श्री भगवान् कहते हैं कि-

न साधयति मां योगो-न सांख्यं धर्म उद्धव॥
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो-यथाभक्ति ममार्जिता॥

अर्थात्-हे उद्धव? योग हो-स्वाध्याय हो-त्याग हो-ज्ञान हो-धर्म हो-तपस्या हो-इन किसीसे भी मैं प्राप्त नहीं होता हूं केवल भक्त जनही भक्ति के द्वारा मुझे प्राप्त करसके हैं।

साधक कवि श्रीनाभाजी नेभक्ति का शृंगार इस प्रकार वर्णन किया है कि भक्ति महारानी की यदि सेवा करने की इच्छा हो तो बड़े यत्न से उनको हृदय में विराजमान करना चाहिये। फिर श्रद्धारूप सुगन्धित तेलसे उनके अंगका मर्दन करके श्रवण का उबटना लगा- अज्ञान का मैल छुड़ाके मन जलसे स्नान कराके दया रूपी कोमल वस्त्र

से अंग को पोंछना चाहिये और निष्ठा के सुन्दर वस्त्र पहराके हरि सेवा रूप भूषण धारण कराके साधु सेवा रूप कर्णफूल स्मर्ण नथ धारण कराके उन्हें भूषित करना चाहिये। पश्चात् सत्संग का अंजन लगाके अनुराग के सहित उनकी प्रीति का साधन करना चाहिये।

भक्ति शास्त्र में भक्ति के नौ अंग वर्णन किये गये हैं। १ श्रवण २ कीर्तन ३ स्मर्ण ४ पाद सेवन ५ अर्चन, ६ वंदन दास्य ८ सख्य और आत्म निवेदन। इन नौ में से यदि मनुष्य एक अंगका भी साधन करले तो वह माया बन्धन से मुक्त होकर परमधाम प्राप्त कर सका है।

हमने विशाल अमृत समुद्र गर्भ से एक अंजुली जल की न्यांई यह भक्ति विषय वर्णन किया है जान पड़ता है इस क्षुद्र आलोचना से किसी को भी तृप्ति न होगी इसलिये जो पिपासार्त हैं उनसे प्रार्थना है वे कृपा कर भक्ति शास्त्र रूप वारिधि में निमग्न होकर अपनी पिपासा दूर करने का प्रयत्न करें।

अन्त में आइये ! हम सब मिल कर उन श्रीराधावल्लभ प्रभु से यही प्रार्थना करें कि:-

न जनंच धनं न सुंदरी कवितां जगदीश कामये ॥
मम जन्मनि जन्मनि जन्मनि भवतु भक्तिरहैतुकी त्वयि ॥

स्वामी रामतीर्थ जी महाराज के अमूल्य वचन।

१-प्रेमका अर्थ व्यवहार में, पड़ोसियों के साथ और जो तुम्हारे सम्पर्क में आवें उनके साथ अपनी एकता और अभेदता का अनुभव करना है।

२-प्रेम कला भी है और विज्ञान शास्त्र भी। वैज्ञानिक आविष्कार तो महान् सूर्य अर्थात् प्रेमाग्नि अथवा एकानुभव की चिनगारियां या चमचमाहट मात्र हैं।

३-एक मात्र शास्त्रानुकूल धर्म है प्रेम। प्रेम में निवास करना ही अपने प्रति सच्चा रहना है।

४-सच्चा प्रेम आत्मा को सूर्य के सदृश विकसित करता है। मोह मन को पाले के समान सिकुड़ा देता और संकुचित कर देता है।

५-प्रेम को मोह से मत मिलाओ अर्थात् प्रेमको मूढ़ से मोह मत समझो।

६-भक्ति (प्रेम) चिल्लाने व मांगने की अभावात्मक दशा नहीं है। यह तो एकत्व तेजोमय माधुर्य और दिव्य मस्ती का अनिर्वचनीय भाव है। जो कुछ हम देखते हैं उसमें सर्व रूपको देखना भक्ति है। जहाँ कहीं दृष्टि पड़े उसमें अपनी आत्मा को देखना भक्ति-प्रेम है। सर्व रूप परमात्मा सौन्दर्य रूप है और मैं वह हूं इसका अनुभव करना भक्ति (प्रेम) है। तत्वमसि अर्थात् वही तू है।

७-विषय-वासना विहीन प्रेम आध्यात्मिक प्रकाश है।

८-प्रेम या अभेदानुभव जब दो व्यक्तियों के बीच आचरित होता है तब मेर रूपी भ्रम का नाश कर देता है।

९-जीवन संग्राम में कौन सी वस्तु विजयिनी होती है ? प्रेम !

१०-प्रेम का अर्थ सुन्दरता का प्रत्यक्षीकरण है।

११-प्रेम ही एक मात्र दैवी विधान है। और सब विधान सुव्यस्थित लट्ठमार हैं केवल प्रेम ही को नियम भंग करने का अधिकार है।

१२-प्रेम इस हदतक गलत समझा गया है कि

'प्रेम' शब्द का उच्चारण मात्र ही प्यारे लोगों को दिव्य ज्योति की जगह कामुकता या मूढ़ता के भाव की सूचना दे देता है।

१३-प्रेम अन्तः प्रेरणा करता है, मस्तिष्क (बुद्धि) उसकी व्याख्या करती है। जिस प्रकार वस्त्रों से पहिले शरीर होता है उसी प्रकार विचार से पूर्व भावना होती है।

१४-सम्पूर्ण इच्छा प्रेम है और प्रेम ईश्वर है; और वह ईश्वर तुम हो।

१५-जहां प्रेम है वहां छोटापन, बड़प्पन, ऊंचाई, नीचाई कुछ भी नहीं है।

१६-जब तुम प्रेम में एकीभूत होते हो तब सारे चमत्कार सम्भव हो जाते हैं।

१७ यह एक तथ्य है कि जिस मनुष्य ने कभी प्रेम नहीं किया वह ईश्वरानुभव कदापि नहीं कर सकता।

१८ भय केवल सकुंचित प्रेम है, अन्यथा भय पर प्रेम किस प्रकार विजयी हो सकता है।

१९ दिखलाने का प्रेम, झूठे भाव और बनावटी कल्पना ईश्वर के प्रति अपमान है।

२० जिस समय आप विरह और भेद के दल-दल में फंस जाते हैं तभी आप सुख से रहित और क्षुधा व्याधि से पीड़ित होते हैं। जिस समय आप अपने को समस्त और सर्व रूप अनुभव करते हैं तभी आप पूर्ण और सर्वरूप होते हैं।

२१ जब कोई बात स्पष्ट बिगड़ रही हो उस समय अपने आपको प्रेम के विधान से ठीक करने के बदले अड़ोस पड़ोस या आस पास की वस्तुओं से झगड़ना, टेलीफोन के अदृष्ट सिरेसे बोलने वाले किसी मित्र से अशुभ समाचार सुनने पर टेलीफोन यन्त्र के कान पर लगाने वाले भाग को तोड़ डालने जैसा है।

२२ यह सत्य है कि बकवादियों, बाह्य आकृतियों या रूपों में विश्वास करने वालों और लज्जाजनक प्रतिष्ठा के निर्लज्ज दासों की संगत के समान और कोई घिनौना पदार्थ नहीं है। परन्तु जहां प्रेम-प्रभु का डेरा लगता है वहां पर कोई भी गुस्ताख अवारा चक्कर नहीं लगा सकता।

२३ ऐ मनुष्य! तुम ही अपनी दृष्टि से सब वस्तुओं को चित्ताकर्षक बनाते हो। उन आंखों से उनकी तरफ देख कर तुम स्वयं ही अपना तेज उस पदार्थ पर डालते हो और फिर तुम स्वयं ही से उसके प्रेम में आसक्त होते हो।

२४ काल प्रेम के स्वभाविक बोध के साथ रहने के लिये विवश है।

२५ पहिले हृदय पर विजय प्राप्त करो, फिर बुद्धि से प्रार्थना करो। जहां बुद्धि निराश होती है वहां प्रेम को फिर भी आशा हो सकती है। ऐसी कहानी है कि यात्री के शरीर पर से आन्धी कोट न उतार सकी परन्तु गरमी ने उतरवा दिया।

२६ वह मनुष्य कितना भाग्यशाली है जिसकी सम्पत्ति चोरी होगई है। और जिसकी पत्नी चली गई है वह तिगुना भाग्यशाली है यदि ऐसा होने से उसका प्रेम-स्वरूप परमात्मा के साथ सीधा संयोग हो जाय।

"हे प्रभु! यह मेरे प्राण स्वीकृत कीजिये और इसे निज अर्पित होने दीजिये इस में शब्द 'प्रभु' से तात्पर्य आकाश में बैठा हुआ,

बादलों में सर्दी लाने वाला गुरु होता नहीं है; 'प्रभु' का अर्थ है सर्व स्वरूप, तुम्हारे साथीजन ।

२८ प्रेम—मैं इस समस्त परिवर्तन शील संसार का आदि और अन्त हूं। ऐ मनुष्य! इससे परे अन्य कुछ भी नहीं है क्योंकि जिस प्रकार माला के दाने धागे में पिरोये होते हैं उसी प्रकार केवल एक (प्रेम स्वरूप) में यह सारा विश्व बन्धा हुआ है।

श्रीकृष्णप्रेम जी का पत्र *

आप का पत्र पाके मुझे बहुत आनन्द हुआ। उत्तर देने में बहुत विलम्ब हुआ सो क्षमा कीजिये! श्रीभगवान् का मंदिर बन रहा है इस से मेरा बहुत कार्य पड़ता है। तिसके ऊपर श्रीमाता जी का शरीर अत्यन्त पीड़ित हो रहा है! उनके बचने की आशा बहुत कम है! इन सब कारणों से इतनी देरी हुई।

आपके हृदय में भगवान का प्रेम बढ़ रहा है सो बहुत आनन्द की बात है। उस प्रेम के सिवाय पृथ्वी में कोई धन नहीं है और यह प्रेम सिवाय श्रीभगवान् की कृपा के नहीं मिलता। भगवद्वचन है कि भोग और मोक्ष सहज में मिल सकता है परन्तु प्रेम अतिदुर्लभ है। हृदय में लेश मात्र भी प्रेम आने से अपने को अतीव भाग्यवान समझना चाहिये। उस हृदयस्थ प्रेम बीज को अति यत्न से बढ़ाना चाहिये! रोज़ जल से सींचना चाहिये। कैसा जल? नाम जप एवं साधु सङ्ग! साधु किसको कहते हैं? गैरिक वस्त्र धारण करने वाला साधु नहीं, बड़े २ नामधारी भी साधु नहीं, योग सिद्धी चमत्कार दिखाने वाला भी नहीं, साधु वही है जो भगवद्भजन में तत्पर है। जिसका दिल भक्ति से भरा है! जिसके पास रहने से सहज में भगवान् की चिन्ता आती है। चाहे वह घर में रहते हैं चाहे त्यागी हो के जंगल में रहते हैं वही साधु है। ऐसे मनुष्य का सङ्ग करना चाहिये! जिसके ऊपर यदि उनकी सेवा करने पायें तो अपना असीम सौभाग्य समझना चाहिये:-

भगवान के नाम का जप भी करना चाहिये

---

* अभी कुछ दिन हुये श्रीचन्द्रभाल अवस्थी जी के पास श्रीकृष्ण प्रेम जी का एक पत्र आया है जिसमें कि उन्होंने कुछ उपयोगी भगवत्प्रेम सम्बन्धी शिक्षा दी है 'श्रीकृष्ण प्रेम जी' जो कि इस पत्र के लिखने वाले हैं के विषय में सूक्ष्म में इतना कहना उचित होगा कि वह जन्म से अंग्रेज हैं और भारत में ८, १० वर्ष से हैं पहिले पहल वह लखनऊ विश्व विद्यालय में अंग्रेजी के प्रोफेसर हो कर आये थे, और इनको प्रारम्भ से हिन्दी भाषा से प्रेम था आपने हिन्दी व संस्कृत पढ़ी है। पश्चात् आपने अपने पद से स्तीफा देकर "हिन्दू विश्व विद्यालय में" कम तनख्वाह में जाकर रहना पसंद किया यद्यपि लखनऊ में उनको १५०=) मासिक की जगह मिलती थी परन्तु उसको स्वीकार नहीं किया। बनारस में वह अपने गुरु के साथ रहे और फिर उन्हीं की आज्ञा से उस पद को भी छोड़ कर वैष्णव साधु हुये और आज कल अलमोड़ा से १६ मील दूरि पर एक निर्जन स्थान में भगवद्भजन करते हैं। दर्शन करने से स्वयं भगवद्भजन की मूर्ति मालूम पड़ते हैं। और उनसे बातचीत करने मात्र से ही भगवत्प्रेम हृदय में उत्पन्न होता है। आप स्वयं इसका अनुभव उनके इन विचारों से करेंगे जो कि उन्होंने इस पत्र में लिखे हैं। आशा है पाठक इस पत्र से कुछ ज्ञान उठावेंगे। (सम्पादक)

सुबह शाम नियम करके एवं अन्य समय यथा शक्ति नाम लेना चाहिये ! भगवान् का जो रूप आपको प्रिय हो उस रूप का नाम लेना चाहिये ! अपने को उनका दास समझ के हर वक्त अपने उस सम्बन्ध की भावना करना चाहिये ! खाना, पीना, लिखना, पढ़ना, सोना घूमना सब कुछ उसको अर्पण करना चाहिये, उनकी प्राप्ति के वास्ते करना चाहिये।

मायावाद वेदान्तियों या योगियों के फन्दे में मत फसना। जिसको ज्ञान चाहिये उसके वास्ते मायावाद वेदान्त खराब नहीं। जिसको सिद्धी चाहिये तिस के लिये योग अच्छा परन्तु जो श्री भगवान् को प्राप्त करने की कामना करते हैं एवं जो उनका माधुर्य आस्वादन करना चाहता है उनके लिये ये सब पन्थ प्रतिकूल हैं।

आधुनिक कहना है कि भक्ति मार्ग औरतों या बेवकूफों के लिये है सो नहीं है ! भक्ति सर्वोपरि है ! भक्ति के बिना मुक्ति तक नहीं मिल सकती। भगवत्प्राप्ति की क्या बात है। मायावादियों का मत है कि केवल एक निर्विशेष निराकार ब्रह्म है। भगवान् उस ब्रह्म की कल्पना मात्र हैं ! परन्तु उनका यह कहना यथार्थ नहीं है। भगवान् में माया की गन्ध भी नहीं है ! माया उनकी शक्ति है ! निर्विशेष ब्रह्म उनकी ज्योति है ! गीता अध्याय १४ श्लोक २७ में भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है, "ब्रह्मणोहि प्रतिष्ठाऽहम्" अर्थात् वही निर्गुण ब्रह्म का आधार मैं हूं ! खैर, यदि यह सब जानने की इच्छा होय तो मालूम कर सकते हो, अन्यथा आवश्यकता नहीं है ! केवल इतना जानना चाहिये कि भगवान् सर्वोपरि हैं ! उनकी कृपा असीम है ! वे ऐश्वर्य, माधुर्य, सौन्दर्य, भक्तवत्सलता से पूर्ण हैं ! तीनों लोक उनके वश में होने से भी उन्होंने कहा है कि "अहं भक्तः पराधीनः" मैं अपने भक्तों के वश में हूं !

अपने किये हुये पापों से मत घबड़ाना ! भगवान् का नाम लेने से वे सब खन्डित हो जाते हैं। यदि उनको अपने सद्गुणों से प्राप्त करना चाहे तो हजार वर्ष तक तपस्या करने से भी वे दुर्लभ हैं ! परन्तु वे दीनबन्धु हैं ! दीन होके जो उनकी शरण में जाता है निराश कभी नहीं होने पाता ! इस वास्ते उन्होंने गीता में कहा है कि सब धर्मों का आश्रय छोड़ के एक मात्र मेरी ही शरण में आओ ! मैं तुमको सब पापों से मुक्त करूंगा ! भय मत करो ! जय श्रीकृष्ण

आपका भाई

श्रीकृष्ण प्रेम भिखारी

भगवत् प्रेम और कृपा

[ले० श्री स्वामी आत्मानन्द जी]

प्रेम

ईश्वरपर प्रेम रखने का कारण यदि हम समझ जायं तो हम और भी अच्छी रीतिसे प्रभु प्रेमी हो सकेंगे। महान् पुरुषों का यह कथन है कि प्रभु पर प्रेम रखने के दो कारण हैं। प्रथम यह है कि राजा से मित्रता करने को सबका मन चाहता है क्योंकि वह साधारण मनुष्यों की अपेक्षा अधिकार में बड़ा है और उसकी मित्रता से बड़े २ लाभ होते हैं इससे सबलोग राजा से मित्रता करने की इच्छा रखते हैं। तब भाइयो ! विचार करोकि अनंत

ब्रह्मांड का नाथ महान् प्रभु तो महाराजा तथा देवों का भी देव है। इससे मित्रता करने की इच्छा किसे न होगी ? किन्तु सबको होगी ! महान प्रभुसे बढ़कर दूसरा कोई नहीं है और न कोई उसकी बराबरी ही कर सकता है। वह भलेसे भला उच्च से उच्च तथा सर्वश्रेष्ठ है। उससे बढ़ कर सत्तावान, ऐश्वर्यवान, बुद्धिमान् तथा आनन्द की वस्तु और कोई नहीं है। सारांश कि यह है जो कुछ उत्तम वस्तु हम देखते हैं वह प्रभु में है और उससे सब कुछ प्राप्त होसकता है. इससे हमें परम कृपालु जगन्नियंता पर पवित्र प्रेम रखना चाहिये।

प्रभु प्रेम रखने का दूसरा कारण यह है कि उसने हमें उत्पन्न किया है, वह हमारा पोषण करता है। उसकी इच्छा से ही हमें जीवन मिला है, उसकी कृपा से ही हमें सब प्रकार के सुख मिले हैं और वही हमारा मोक्षदाता है, इससे उस पर शुद्ध मन से अखंडित प्रेम रखना चाहिये। पिता द्वारा किये हुए उपकार के लिये पुत्र स्वभावतः उसे प्यार करता है और जंगली जानवर भी अपने पालने वाले को चाहते हैं। तब हम तो श्रेष्ठ मनुष्य हैं और उसमें भी प्राचीन धर्म तथा अनुकूल साधन वाले हैं। इससे हमारे ऊपर अगणित उपकार करने वाले सर्वशक्तिमान, जगत्पिता परमात्मा पर अनन्य भाव से हमें सदा सर्वदा प्रेम रखना चाहिये। यही प्रभु के साथ प्रेम करने का कारण है।

ऐसा होने पे हमें यह जानना चाहिये कि हम कैसे प्रभु पर प्रेम रख सकते हैं ? इसके लिये महात्मा गण कहगये हैं। तनसे, मनसे, धनसे ईश्वरमय होकर रहना और सर्वभाव से ईश्वर की ही इच्छा रखने का नाम प्रभु प्रेम है। तनसे काम करने का अर्थ यह है कि जो काम करना हो वह सब प्रभुके लिये ही करना तथा उसे भगवदर्पण कर देना चाहिये। मनसे चाहने का अर्थ यह है सर्वदा मनमें ईश्वर का स्मरण किया करो ईश्वर का ही चिंतन करो और व्यवहार में भी मन से ईश्वर की भावना दूर मत होने दो। धनका अर्थ है कि व्यवहार में, परमार्थ में या दान धर्म के लिये जो धन दो वह अपना बड़प्पन दिखाने के लिये अभिमान से नहीं किन्तु जगत् में प्रभु की महिमा बढ़े, मनुष्यों में धर्म बढ़े और अपने भाई बहिनों में सुख बढ़े इस विचार से प्रभुके अर्थ धन व्यय करो। इस प्रकार तन, मन और धनसे प्रभु परायण होजाना ही प्रभु प्रेम का लक्षण है यही प्रेम लक्षणा भक्तिकी उत्तमता है और ऐसा श्रेष्ठ जीवन व्यतीत करने में ही हरिजनों की प्रशंसा है। ऐसा प्रेम जिस पर रखा जाता है वह प्रभु कैसा है ? इसके लिये एक कविने कहा है।

ऐसा देश हमारा साथो ऐसा देश हमारा है।
अलख अविरथ अरूप अनामी गुण अवगुणते न्यारा है।
अगम अगाध अनन्त अनादि, अचल अखंड अपारा है॥
सतचित् आनन्द परम मनोहर सब जीवन का प्यारा है।
मन से परे बुद्धि से बाहर, निर्भय राम विचारा है।
कहत कबीर सुनो भाई साधो ये प्रभु हम निरधारा है॥

कृपा

महात्मा गण कहते हैं कि प्रभु कृपा का अर्थ प्रभु पर हृदय से सच्चा विश्वास करना है, हृदय की पवित्रता है और प्रभु कृपा का अर्थ हमें मोक्ष प्राप्ति के लिये प्रभु से मिलने वाली सहायता है। प्रभु कृपा का इससे भी अच्छा अर्थ यह है कि हृदय में शुभ विचार आवें पवित्रता से रहने की हृदय में प्रेरणा हो, ईश्वर के हृदय में प्रेरणा हो, ईश्वर की सेवा स्मरण में जीव सदा लगा रहे और मृत्यु पर हरि की पवित्र सेवा में मोक्ष धाम में रह सके, इसी का नाम प्रभु कृपा है।

ईश्वर कृपा से होता क्या है? जिस पर प्रभु की कृपा होती है उसकी आंखें खुल जाती हैं, उसका मोह दूर हो जाता है, माया का मिथ्यापन उसकी समझ में आजाता है और ईश्वर का सत्य स्वरूप उसके हृदय में जम जाता है इससे वह मनुष्य भक्त बन जाता है।

प्रभु कृपा दो प्रकार की होती है, एक लौकिक दूसरी अलौकिक।

लौकिक कृपा अर्थात् शरीर को सुख, लम्बी आयु, लड़के बाले आदि का सुख, रूप, गुण आदि का पुरस्कार, धन, मान, इज्जत और दूसरे प्रकार के संसारिक सुख, यह सब प्रभु की लौकिक कृपा का फल है। ये सब हमें इसलिये मिले हैं कि हम सरलता पूर्वक प्रभु के मार्ग चल सकें। प्रभुका मार्ग हमें सुख रूप होजाय, इसी लिये उपयुक्त सब प्रकार की सहायतायें हमें प्रभु कृपासे मिली हैं। यदि हम उनमें मुग्ध होजाँय और उन सहायताओं के देने वाले की किंचित् भी सप्रेम विनय न करें अथवा लौकिक कृपा में सहायक नहीं तो उलटे ये बन्धन कारक हो जाते हैं। इससे लौकिक कृपाको प्रभु की सेवा स्मरण में और प्रभु के प्यारे भक्तों के धर्म के कर्मों में सहायता करने में ही लगाना चाहिये।

ईश्वर की अलौकिक कृपा का अर्थ प्रभु को भजने की इच्छा होना, पाप से दूर रहने का प्रयत्न करना और ईश्वर की चर्चा में दिलचस्पी लेना है।

ईश्वर की अलौकिक कृपा चार प्रकार की है।

१ प्रथम कृपा होनेसे शुभेच्छा उत्पन्न होती है, अर्थात् जगत् के जीवों के साथ भलाई करने की इच्छा होती है, उनके बर्ताव यानी शुद्धाशुद्ध व्यवहार को ईश्वर की प्रेरणा समझ किंचित् भी हर्षामर्ष, भय और उद्वेग को प्राप्त नहीं होता। जिससे उसका सांसारिक व्यवहार निर्विघ्नता पूर्वक नीति धर्मानुसार चला जाता है।"

"नहिं खगेश कछु ऋषि दूषण, उर प्रेरक रघुवंश विभूषण।
लीन्ह शाप मैं शीश चढ़ाई, नहि कछु भय न दीनता आई"।

"ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यंत्रारूढानि मायया।"

"भिद्यते हृदय ग्रन्थि श्छिद्यन्ते सर्व संशयाः।
क्षियंते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टि परावरे।"

रामायण, गीता, श्रुति इत्यादि अनेक प्रमाण हैं यह बात निर्विवाद है कि जैसे सूर्योदय के पहले ही अरुणता सूर्य आने की सूचना देती है इसी प्रकार भगवत् कृपा के आगमन को उपर्युक्त गुण सूचित करते हैं।

२ दूसरी कृपा होने से प्रभुकी भक्ति करने की टेव पड़जाती है, अर्थात् जगत् के जीवों के साथ प्रेम का बर्ताव करने की इच्छा होती है। सेवास्मर्ण में बल आजाता है और भक्ति का मानसिक आनंद बढ़ जाता है।

३ तीसरी कृपा होने पर सब प्रकार के पाप छूट जाते हैं। प्राण जाने का अवसर उत्पन्न होने पर भी ऐसी कृपा वाले मनुष्य पाप कर्म नहीं करते। इस स्थिति में प्रभु के साथ अखंड तार लगा रहता है और महात्माओं का जीव ईश्वर में ही रमण किया करता है। वे सर्वदा समाधि यानी ईश्वरीय आनंद में मग्न रहते हैं।

४ इसके पश्चात् चौथी कृपा होने पर प्रभु के कृपा पात्र भक्त का उद्धार होजाता है। मृत्यु के पश्चात् वह प्रभु की सेवामें यानी मोक्ष धामको प्राप्त होता है और अनंत काल तक अखंडित मोक्ष सुख का भोग करता है।

परम प्रिय पाठको! इस मनुष्य शरीर को सार्थक करना चाहिये यह नर जन्म देवताओं के लिये भी दुर्लभ है, ऐसे सुर दुर्लभ नर शरीर को

पाकर इसकी अवज्ञा मतकरो ! यह मनुष्य शरीर परमात्मा का दान है इसकी अवहेलना करना उचित नहीं है। मृत्यु सर्वदा शिरपर खड़ा रहता है, इस में देर करना ठीक नहीं है। ईश्वर के कृपा पात्र बनकर अखंडित मोक्ष सुख के लिये तनमन धन से श्रद्धा पूर्वक प्रयत्न में उद्यत होजाना चहिये। यदि अबके चूक गये, इसी शरीर में शांति को प्राप्त न किया, ईश्वर के कृपा पात्र न बने तो ईश्वर भी मनुष्य शरीर को न देगा, यदि मनुष्य शरीर भी मिलगया तो बुद्धि न देगा, क्योंकि बुद्धि पाकर सदुपयोग नहीं किया विचार पूर्वक ईश्वर का चिंतन नहीं किया तो वह योग्यता न देखकर फिर बुद्धि कैसे देगा ? इसलिये पाठको ! संसारी पुरुषों की ओर ध्यान न देकर दृढ़ प्रतिज्ञ होकर ईश्वर के कृपा पात्र बनो ! कृपा पात्र बनो !! कृपा पात्र बनो !!! इस काम को न चूको ! न चूको !! किसी प्रकार से भी मत चूको !!!

प्रेमा भक्ति के साधन

[ले० भगवान श्री मथुराप्रसाद जी]

प्रेमाभक्ति का तीसरा साधन भजन किया है। भजनानंदी सन्त तथा भगवत् भक्तों से भजन की क्रिया सीखनी चाहिये। भज सेवायां से भजन शब्द बना है। सेवा दो प्रकार की होती है एक बाह्य दूसरी मानसी। श्री वल्लभाचार्य स्वामी जी ने आज्ञा की है।

कृष्ण सेवा सदा कार्या मानसी सापरा मता।
चेतस्तल्लक्षणं सेवा तस्सिध्यै तनु वित्तजा ॥

अर्थात् मानसी सेवा उच्च कोटी की है उस की सिद्धि के अर्थ बाहिरी सेवा है जो शरीर तथा धन के द्वारा की जाती है। और चित्त का सेवा में अहर्निश लगा रहना उसकी सफलता समझना चाहिये।

मानसी सेवा की विधि गुरु गम्य है बिना गुरु के नहीं आती और जबतक मानसी सेवा सिद्ध न हो बाह्य सेवा षोडश उपचार से चित्त लगाकर करनी चाहिये। जिसका महत्व बहुत बड़ा है।

एक राजा के कुष्ट (कोढ) का रोग इस दर्जे पर पहुंच गया कि बड़े२ वैद्य पचकर हार चुके थे। अन्त में निराश होकर वह मरने को गंगा तट पर चलागया।

उस स्थान में निश्चय हुआ कि यदि कोई सन्त महात्मा अपने भजन तप का फल राजा को देवे तो आरोग्यता संभव है। इस विचार के अनुसार कितने ही तपस्वी और कर्मेष्ठी सत्पुरुष बुलाये गये और उन्होंने राजा जी के निमित्त अपनी सारी उमर की तपस्या का फल देभी दिया परन्तु कुछ लाभ न हुआ प्रत्युत रोग बढ़ता ही गया। उसी अवसर पर एक बुढ़िया भीड़ देखकर आ निकली उसने सारा वृत्तान्त सुनकर कहा कि यह कितनी सी बात है लो मैं एक समय की जलभारी से भगवत्सेवा का फल देती हूं। ज्योंही बुढ़िया ने संकल्प करके जलका छींटा दिया राजाकी देह दिव्य निर्मल होगयी। इस चमत्कार को देख सारे जटा धारी, तपस्वी, योगी लज्जित होकर अपना सा मुंह लेके चलदिये और सबने कहाकि भगवत् सेवा का ऐसा प्रभाव हुआ तो सर्वाङ्ग सेवा का फल कितना होगा विचारणीय है। आजकल लोग पूजाअर्चा

दिखाई देते हैं पुजारी होकर बेगार काटते और मर कर शूकर कूकर की योनि पाते हैं।

यह कारण है कि आरती के समय कुत्ते रोया करते हैं पूर्व जन्ममें वे पूजारी थे अपने गत जन्मका स्मरण कर पछताते हैं यदि प्रेमसे सेवा करें तो पूजाअर्हों। (पूजा के योग्य) समझे जावें।

भगवत् नाम का जप और स्मरण भी भजन के अन्तर्गत समझा जाता है और उसकी क्रिया भी सन्त महात्माओं से ही प्राप्त होती है। इस हेतु श्रद्धा के बाद सत्संग और फिर भजन किया बतलाई गई है। 'तत्पश्चात् अनर्थ निवृत्तिः' अर्थात् पापों का नाश अवश्य होता है। हरिनाम के जप स्मरण से पातकों की निवृत्ति में अनेक प्रमाण हैं।

नाम्नो हि यावती शक्तिः पापनिर्हरणे हरेः।
तावत् कर्तुं न शक्नोति पातकं पातकी जनः

जितनी सामर्थ्य पापों के नाश करने की हरिनाम में है उतने पाप पातकी मनुष्य करही नहीं सकता।

आजकल नई रोशनी के चकाचौंद से लोग कह बैठते हैं कि नाम में पाप नाश और दुःख निवृत्ति की कहावत केवल फल स्तुति मात्र है। लिखा है कि हरिनाम से तीनों पाप मिटते हैं परन्तु हमारा जुखाम दर्द कई बार नामलेने से नहीं मिटा।

इस। उत्तर यह है कि अन्तःकरण श्रद्धा से शून्य और संशय से पूर्ण होने के कारण यथावत् फल क्योंकर प्राप्त हो। एक मनुष्य कुष्टी था और किसी उपाय से उसका रोग नहीं गया। एक महात्मा ने उससे कहा कि कबीर साहब के दर्शन करो तो आश्चर्य नहीं कि कुष्ट मिट जाय।

वह दौड़ा हुआ कबीर जी के स्थान पर पहुंचा कबीरजी कहीं गये हुए थे उनका पुत्र कमाल मिला उसने आगमन का कारण पूछा तो रोगी ने कह सुनाया। कमला ने उत्तर दिया कि इस थोड़े से कार्य के लिये पिताजी की क्या आवश्यकता है। तीनबार राम राम कह लो कुष्ट जाता रहेगा। रोगी ने तीन बार नाम उच्चारण किया उसी क्षण में उसका शरीर शुद्ध होगया। इतने में कबीर साहाब आगये उन्होंने यह वृत्तान्त सुना तो अत्यन्त क्रोध करके अपने पुत्र कमला के थप्पड़ मारकर कहा कि तू हमारे पास से चलाजा तुझे राम नाम में इतनी अश्रद्धा है कि तीन बार उच्चारण कराया। अरे एक बार नामके प्रभाव से सारे कष्ट मिट जाते हैं तूने तीन बार कहलावा प्रभाव को न जाना। देखो महात्मा कबीरजी की नाममें कैसी श्रद्धा थी आज कल के लोग कुतर्कों से भरे हुए कह बैठते हैं कि शक्कर शक्कर कहने से मुंह मीठा नहीं होता तो राम राम कहने से क्या फल होगा।

पांचवां साधन निष्ठा है अति दृढ़ता के साथ भक्तिमें कदम जमाये रखना और किसी कारण से भी न डिगना इसी का नाम निष्ठा है। इसमें भक्तप्रह्लाद तो प्रसिद्ध ही है क्योंकि उन्होंने घोरकष्ट और महा संकट सहकर भी प्रेम पंथसे चरण न हटाया और मीरां बाई आदि अनेक निष्ठा वाले भक्तों के चरित्र आप लोगों ने सुने होंगे। परन्तु हम आपको एक नवीन चमत्कारी कथा सुनाते हैं जो बहुत पुरानी होने पर भी आपको नवीन सुख दायी होगी। गंगा यमुना के मध्य प्रदेश में एक सुवर्ण शेखर नाम नगर था जिसमें धन रूप मल नामी साहूकार अति धनाढ्य सेठ निवास करता था। उसको और सब प्रकार के सुख साधन प्राप्त होने पर भी महादुःख सन्तान के अभाव का था। जिसकी चिन्ता में दिन रात उसका शरीर दग्ध हुआ

करता धीरज नहीं धरता था । वह हरिको सुमरता था, साधुसेवा में तत्पर रहने परभी किसी साधु सन्त से कुछ न मांगता था । एकदिन एक बड़े सिद्ध महात्मा आ निकले । सेठ सेठानी ने उन का अत्यन्त मान आदर पूर्वक सत्कार किया । महात्मा प्रसन्न हुए और कहने लगे । तुम लोग उदास मालूम होते हो । मुख तुम्हारा मुरझाया सा मालूम पड़ता है क्या कोई चिन्ता तुम्हारे शरीर को दग्धकर रही है । जो कुछ दुःख हो कहो संकोच न करो । सेठानी ऐसे वचन सुनके रोपड़ी और गिड़ गिड़ा कर बोली महाराज और सब संपत्ति भगवान् ने देरखी है केवल सन्तान न होने से हमें महाखेद है यह घर महल मंदिर सब श्मशान जैस लगते हैं । मुझे सब बाँझ बतलाते और अभागिनी समझते हैं यदि पुत्र न सही कन्याही मेरेपेट से होजाती तो उसी को मैं अधिक अपना सौभाग्य मानलेती । महात्मा को सेठानी पर दया आगई । कहने लगे अच्छा अब तू चिन्ता को दूर करदे तेरे उदर से एक वर्ष के भीतर एक कन्या रत्न उत्पन्न होगी जो अति सुंदरी और शुभ गुण संपन्न होगी । यह मृदु वचन सुन सेठ सेठानी दोनों महात्मा के चरणों पर गिर पड़े । महात्मा आशीर्वाद देकर चले गये । और ठीक १२ मास के अन्दर सेठानी के पेट से एक कन्या का जन्म होगया और सेठ ने पुत्र जन्म से बढ़कर खुशी मनाई हजारों का द्रव्य लुटा दिया । साधु सेवा पहले से भी अधिक श्रद्धा से करने लगा । नाम उस कन्या का चन्द्रकला रक्खा गया । परन्तु स्वभाव में उसके बाल्य अवस्था से ही हट अधिक था इस कारण से हटीली बाई उसे सब कहते थे । हटीली जब पाँच वर्ष की हुई तो पड़ोस में श्रीमद्भागवत् की कथा होती थी उसे मन लगा कर सुनती थी और श्रीकृष्ण की बाललीली सुनने में उसका चित्त अधिक लगने लगा । एकबार रास मंडली का रासभी उसने देख पाया फिर तो दिन प्रतिदिन उसका प्रेम बढ़ने लगा ।

कुछ समय के अन्दर वो एकबार अपनी माता के पास आकर कहने लगी । माता मैं तो नंदलाल के साथ खेला करूंगी वो बड़ा खिलाड़ी है उसे बुलादे । मां ने समझाया कि बेटी उनको अपने धाम पधारे कई हजार वर्ष बीत गये अब कहाँ से आसकते हैं । हटीली बोली तू झूठ बोलती है मैं ने कथा में सुना है कि नन्द नन्दन कहीं नहीं गये वो सब ठौर मिलते हैं और जो कोई बुलावे उसी के पास आजाते हैं । मैं तो अन्न तब ही खाऊंगी जब नंदलाला को देखलूंगी उन्हीं के साथ खेलूंगी और ऐसा कहकर रोने लगी अन्न जलका त्याग कर दिया, तीन दिन रात गुजर गई । तब सेठानी ने अपने पतिसे सारा हाल कहा, उसने भी पुत्रीको बहुत समझाया पर हटीली हटको कब छोड़ सकती थी उसी तरह रोती रही और पिता से बोली कि कथा की बात झूठी नहीं हो सकती वो कृष्ण तो व्रज को छोड़कर कहीं जाता आता ही नहीं तुम व्रज में से उसे बुला भेजो ।

सेठ ने लाचार होकर अपने मित्रों से यह वृत्तान्त कहा उनमें एक भक्त भी था और चतुर था उसने सलाह दी कि किसी रास मंडली के मुखिया से मिल कर एक बालक को मोर मुकुट आदि श्रीकृष्ण का वेष धारण करा कर बुलालो । सेठ ने ऐसा ही किया रास में जो कृष्ण बनता था वह बालक सेठ के मकान पर नित्य थोड़ी देर के लिये आजाया करे यह बात ठैर गई । चौथे दिन हटीली अति दीन होकर भूखी प्यासी पड़ी हुई रो रही थी अचानक सायंकाल के समय मोर मुकुट पीताम्बरधारी

बनवारी मुरारी (वोही रास मंडली वाले) मुरली हाथ में लिये हुवे रुमझुम रुमझुम नूपुरों का शब्द करते सेठ के मकान में पधार कर बड़ी मीठी बोली में कहने लगे कि हमारी सखी हटीली कहां है ? ऐसा मधुर शब्द सुनते ही हटीली दौड़ी आई और झांकी करके तन बदन में फूली न समाई चरणों में गिर गई। जब बालकृष्ण ने उसे हाथ पकड़ कर उठाया तो हटीली कहने लगी प्यारे इतने दिन मेरी सुध न ली कहां थे ? आप हंस कर बोले कि हम बरसाने चले गये थे आज ही आये हैं। हमें भूक लगी है कुछ भोजन जल्दी से लाओ और बात पीछे करेंगे। हटीली दौड़ी हुई माँके पास गई उसके आनन्द की कुछ सीमा न थी। बोली अम्मा प्यारे नन्द नन्दन आगये हैं। तू झूट कहती थी कि वे हज़ारों वर्ष पहले थे वे तो आज ही बरसाने से आये हैं भूके हैं उन्हीं खाने को ले चल। माँ सारा भेद जानती हुई भी भोली बन कर कहने लगी अरी क्या सचमुच श्रीकृष्ण भगवान् आगये तू बड़ी बड़भागिनी है। इतना कह कर माखन मिश्री पेड़े निकाल कर हटीली को दे के बोली कि बेटी तू ही लेजा मुझ से कहीं शरम करके भाग न जायें। हटीली चाँदी के कटोरे में भोजन सामग्री और चाँदी की जलझारी लेके झट ही पहुंच गई। भगवान ने खड़े २ आधा उसमें से पाकर आधा बचा हुआ सखी हटीली को खिला दिया। दोनों ही आनन्द से खेलने लगे। इसी प्रकार नित्य कृष्ण आकर खेल कर चले जाते थे कुछ समय बीतने पर हटीली का ब्याह हुआ। ससुराल धनसे तो संपन्न थी परन्तु हरि भक्ति से सब विमुख विषयानन्दी धन मद में अंधे थे। इसने सास से विनय पूर्वक कहा कि घर पर मेरे साथ कृष्ण भगवान् खेलने आया करते थे उनके दर्शन बिना मैं नहीं रह सकती और प्रसादी वस्तु के सिवाय मैं कोई पदार्थ खाती पीती नहीं हूं। सास ने इसे पागल समझ कर धमकाया और ज़बरदस्ती भोजन खिलाने का यत्न किया। जलती हुई लड़की से मार लगाई तो भी न मानी। ससुर ने भी समझाया इसने हट नहीं छोड़ा। तब वस्त्र भूषण इसके शरीर से उतार कर एक चिथड़ा शरीर ढकने को दे दिया, और फूटे मकान में अकेली करके डाल दिया, हटीली ने एकान्त में रह कर कृष्ण २ रटने में समय बिताया, अन्नजल का परित्याग कर ही दिया था अब इसका शरीर इतना दुर्बल होगया कि मरणासन्न होगई। और रोते रोते मूर्छित हो गई थी। उधर श्रीभक्त-भयहारी, गोविन्द गिरिधारी ने जब देखा कि उसके प्रेम में मतवारी वैश्य कुमारी अधिक विरह ताप के सहने में समर्थ न होकर प्राण परित्याग करने को तैयार है। उनसे रहा नहीं गया, सत्वर आप उसी रास मंडली के बालक की आकृति और वेष धारण कर हटीली के पास जा पहुंचे और विरह की मारी प्यारी वैश्य कुमारी को चेत कराने में उद्यत हुए। ज्यों श्री कृष्णने हस्त कमल उसके मस्तक पर रख के मनोहर मधुर शब्द से कहा "प्यारी हटीली चेतकर मैं आय गयो" बस उन शब्दों ने बिजुली का काम दिया, ज्यों हटीली के कानमें भगवान् की अमृतवाणी पहुंची और श्रीहस्त का स्पर्श हुआ सारी पीड़ा निवृत्त होके शरीर प्रफुल्लित हो गया और आंखे खोल कर टक टकी लगा कर श्रीअंग को देखा तो पहले की अपेक्षा इस रूप में और ही चमत्कार पाया कोटि सूर्य समान तेज पर दृष्टि न ठैर सकी, नेत्र बन्द होगये और खड़ी होकर झटपट श्रीचरण कमलों में गिरके फिर मूर्छित होगई।

भक्त वत्सल भगवान ने उसे श्रीहस्तों से

उठाकर आंसु पोंछे, धीरज दिया तब हटीली को चेत हुआ और बात करने की शक्ति होगई, दीर्बल्य निवृत्त होगया। वह गद्गद कंठों से कहने लगी। प्यारे! तुम बड़े निष्ठुर हो। मेरी सुध भूलगये। मैं आपके दर्शन किये बिना कब जी सकती थी आप के दर्श की तरस ने मेरे प्राण रखलिये। मैंने बुरा किया आपसे प्रीत करी, आप निर्दयी हो। यह बचन सुनकर गोविन्द ने मंद मुसिकान करके हटीली का प्रणय कोप दूर कर दिया और उसकी अटल निष्ठा कायम रखने के लिये यह भेद नहीं दिया कि पहले तेरे मायके हम तेरे पास नहीं आये रासधारी बालक हमारे भेष में आता था। आप लज्जित से होकर अति मधुरी बोली बोले। प्यारी सखी! हम एक क्षण भर भी तुझे नहीं बिसारते। जितनी तेरी प्रीत मुझमें है उससे दस गुणी प्रीत मेरे मन में तेरी है। तेरे मायके तो हम नित्य आते ही थे। अब तेरी ससुराल दूर है इस कारण से आने में आलस्य और विलम्ब होगया क्षमा करें। दूरसे हम चले आरहे हैं भूक लग रही है भोजन जल्दी ला। हटीली को इन बचनों के श्रवण से जो आनंद मिला उसका वर्णन नहीं हो सकता। इसके अनंतर सरकार ने ऐसी घटना करदी कि हटीली की सास और उसके श्वसुर तथा पति सब पूर्ण भक्त बनगये और उस घराने के प्रभाव से नगर भर हरिभक्त होगया। यह है दृढ़ निष्ठा का प्रभाव।

वज्रसूचि उपनिषत्।

चित्सदानन्द रूप वाला, सबकी बुद्धि का साक्षीरूप, वेदान्त से जानने योग्य और अनन्त रूप वाले ब्रह्म को मैं नमस्कार करता हूं। अज्ञान को नाश करने वाले वज्र सूचिनाम का शास्त्र मैं कहता हूं। यह ज्ञान रहित को दूषण रूप है, और ज्ञान चक्षु वाले को आभूषण रूप है॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र, ऐसे चार वर्ण हैं उनमें ब्राह्मण मुख्य है ऐसा वेद और स्मृति में कहा है। यहाँ प्रश्न उत्पन्न होता है कि ब्राह्मण कौन है? क्या वह जीव है? क्या वह देह है, क्या जाति है? क्या वह ज्ञान कर्म या कोई धार्मिक व्यक्ति है?

उसमे प्रथम जीव को जो ब्राह्मण कहा सो नहीं हो सकता, क्योंकि हुए और होने वाले अनेक देहों मे जीव का एक पना है। जीव एक है और कर्म के कारण से अनेक देहों में उसकी उत्पत्ति होती है। सब शरीरों के जीवकी एकता है इसलिए भी जीव ब्राह्मण रूप नहीं! इस प्रकार भी नहीं है, चाँडाल से लेकर सब मनुष्यों का पंच महाभूतों से बना हुआ देह एक रूप है, इसलिये बुढ़ापा, मरण, धर्म और अधर्मादि सबको एकही प्रकार होते हैं, ब्राह्मण श्वेत वर्ण वाला, क्षत्रिय रक्त वर्ण वाला। वैश्य पती वर्णवाला और शूद्र कृष्ण वर्ण-वाला ही हो, ऐसा नियम नहीं है और पिता आदिक के शरीर का दहन करने में पुत्रादिक को ब्रह्म हत्यादिक दोष की सम्भावना होती है, इसलिये देह ब्राह्मण है ऐसा कभी भी सिद्ध नहीं होता। तब क्या जाति ब्राह्मण है?

नहीं ऐसा भी नहीं है। भिन्न जाति वाले जन्तुओं से अनेक जाति वाले बहुत महर्षि उत्पन्न

हुए हैं! जैसे-ऋष्य शृंग मृगली से, कौशिक कुश से, जैवुक शृगाल से वाल्मीकी बाँबी से, व्यास मल्लाह की कन्या से, गौतम शरगोश की पीठ में से, वशिष्ठ उर्वशी से और अगस्त्य कलश से उत्पन्न हुए हैं ऐसा सुना है। इन ऋषियों में से अनेक जाति की प्राप्ति बिना भी पूर्ण ज्ञानवान थे इसलिए ब्राह्मण जाति रूप नहीं है। तब क्या ज्ञान ब्राह्मण है? नहीं! ऐसा भी नहीं है। परमार्थ को जानने वाले और ज्ञानवान बहुत क्षत्रिय भी हुए हैं; इसलिए ज्ञान ब्राह्मण रूप नहीं है। तब क्या कर्म ब्राह्मण रूप है? नहीं! ऐसा भी नहीं है। सब प्राणियों के प्रारब्ध, संचित और आगामी कर्मों का साधर्म्य दीखता है और कर्म से प्रेरित हुए जीव क्रिया करते हैं इसलिए कर्म भी ब्राह्मण नहीं ऐसा भी नहीं है! बहुत क्षत्रिय सुवर्ण का दान करने वाले हैं इसलिए धार्मिक व्यक्ति ब्राह्मण नहीं है। तब ब्राह्मण किसको कहें?

जो आत्मा के द्वैत भाव से रहित, जाति, गुण और क्रिया से रहित, छः उर्मी और छः प्रकार के भाव आदिक दोषों से रहित, सत्य ज्ञान आनन्द, अनन्त स्वरूप, स्वयं निर्विकल्प रूप से रहने वाले, अशेष कल्पों का आधार रूप, अशेष भूतों में अन्तर्यामी रूप रहने वाले, भीतर और बाहर आकाश की समान व्याप्त हुए अखण्ड आनन्द स्वभाव वाले प्रमेय से रहित, अनुभव से ही जानने योग्य, अपरोक्ष भासने वाले आत्मा को हाथ में रहने वाले आमले की समान अपरोक्ष साक्षात्कार करता है और कृतार्थ होकर काम रागादि दोषों से रहित, शम दमादि से युक्त, भाव, मात्सर्य, तृष्णा, आशा मोहादिक से रहित और दम्भ अहंकारादि को जिसका चित्त कभी छूता न हो, ऐसे लक्षण वाले को ब्राह्मण कहें। ऐसा श्रुति, स्मृति पुराण और इतिहास का अभिप्राय है। इसके सिवाय अन्य कोई स्थान पर ब्राह्मणत्व की सिद्धि ही नहीं होती। आत्मा सच्चिदानन्द रूप अद्वितीय है ऐसे ब्रह्म रूप से मनुष्यों को मानना चाहिए।

आत्मज्ञान के प्रतिबन्ध

(ले० महात्मा राम आश्रम)

तावत्सत्यं जगज्जाति शुक्तिका रजतं यथा।
यावन्न ज्ञायते ब्रह्म सर्वाधिष्ठान मद्वयम्॥

शास्त्र विधि से श्रवण, मनन, निदिध्यासन करते हुए भी जिन पुरुषों को आत्मा का साक्षात्कार नहीं होता है उनके कोई ऐसा प्रतिबन्ध है जो उनके लिये आत्मज्ञान की उत्पत्ति में रुकावट करता है। प्रतिबन्ध युक्त पुरुष को श्रवणादिक साधन करते हुए भी आत्मा का ज्ञान नहीं होता। ब्रह्म सूत्रों के कर्ता श्रीवेदव्यास मुनि ने कहा है:-'ऐहिकमप्य प्रस्तुत प्रतिबन्धे तद्दर्शनात्' वर्तमान शरीर में अपना फल देने को सन्मुख हुआ जो कर्म विशेष है उसका नाम प्रस्तुत प्रति बन्ध है। अथवा ब्रह्मलोक की प्राप्ति की इच्छा रूप जो वासना है उसका नाम प्रतिबन्ध है। ऐसे प्रस्तुत प्रतिबन्ध के विद्यमान होते हुए श्रवण, मननादि साधन करते हुए भी वर्तमान शरीर में आत्मा का

ज्ञान नहीं होता किन्तु जन्मान्तर में उसको आत्म-साक्षात्कार होता है। जिन का प्रतिबन्ध किसी विशेष उपाय से निवृत्त होजाता है उनको इसी जन्म में आत्म-साक्षात्कार होता है। प्रतिबन्ध युक्त पुरुष को आत्मा की दुर्विज्ञेयता श्रुति स्मृतियों में भी कही है।

'श्रवणादपि बहुभिर्यो न लभ्यः
शृण्वन्तोपि बहवो यं न विदुः'

यह आत्मा बहुतों को तो श्रवण करने को भी प्राप्त नहीं होता, और बहुत पुरुष इस आत्मा को ब्रह्मनिष्ठ गुरु द्वारा श्रवण करते हुए भी नहीं जानते हैं। 'देवैरत्रापि विचिकित्सितं' पूर्व देवता भी इस आत्मा के विषय में संदेह को प्राप्त हुए हैं क्योंकि अतिसूक्ष्म से भी सूक्ष्म यह आत्मा सुगमता से जानने में नहीं आता है।

'क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया।
दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति'॥

क्षुरा की धारा के समान अति कठिन तथा अत्यन्त दुःख से प्राप्त होने योग्य उस आत्मज्ञान के मार्ग को कवि लोग कहते हैं। इस आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिये अनेक जन्मों से निष्काम कर्म रूप धर्म का, अनुष्ठान करता हुआ, सर्व पापों से मुक्त होकर, शुद्ध अन्तःकरण वाला अधिकारी पुरुष मनके संयम रूप योग के अभ्यास में निरन्तर प्रयत्न करता हुआ उस परम पदको प्राप्त होता है जहां से फिर इस दुःख रूप संसार में नहीं आता। 'यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम' जिस मोक्ष रूप परम धाम को प्राप्त होकर पुनः नहीं निवृत्त होता वही मुझ परमेश्वर का परमोत्कृष्ट धाम कहिए प्रकाशमय है। जिन प्रतिबन्धों के वश हुआ यह पुरुष अनेक उपायों से भी आत्मा को नहीं जानसकता वह प्रतिबन्ध भूत, भावी, वर्तमान इस भेद से तीन प्राकार के होते हैं। पूर्व गृहस्थ काल में जिस वस्तु में पुरुष का अतिराग होता है, उस वस्तु के संस्कारों से जो पुनः २ उसकी स्मृति होती है यह भूत प्रतिबन्ध कहा जाता है।

गुरु द्वारा श्रवण किए हुए अर्थ जब एकान्त देश में स्थित होकर यह पुरुष चिन्तन करता है तब उसको पूर्व अनुभुत वस्तु के संस्कार जो हृदय में जमे हुए थे स्मरण होजाते हैं। इसलिए अनेक बार अभ्यास करते हुए भी आत्मा का साक्षात्कार नहीं होता। जैसे पूर्व गृहस्थ काल में किसी संन्यासी को अपनी भैंस अत्यन्त प्रिय थी। उस भैंस के संस्कार हृदय में जमे हुए थे। इसलिये गुरु से श्रवण किये हुए अर्थ का बार बार अभ्यास करते हुए भी जब आत्मा का प्रत्यक्ष नहीं हुआ तब उस संन्यासी के मुख की अप्रसन्नता को देख कर गुरु ने पूछा "हे सौम्य! तुमको कोई पहली वस्तु का स्मरण तो नहीं रहता? क्या कारण है जो तुमको अभ्यास करते हुए भी आनन्द रूप आत्मा का विकास नहीं हुआ।" तब उस संन्यासी ने उत्तर दिया "हे भगवन्! मुझे मेरी भैंस बहुत प्यारी थी वह मुझे सदा याद आती रहती है, उसी का खयाल बना रहता है। जब २ मैं अभ्यास करता हूं तब २ मुझे उसी भैंस का स्मरण हो आता है।" तब उस संन्यासी के प्रति गुरु ने उस भैंस उपहित ब्रह्म का निम्न लिखित रीति से उपदेश किया। "हे प्रिय दर्शन! यह भैंस जो नेत्रों से रूप को देखती है सो यह रूप का ज्ञाता ब्रह्म है। कानों से जो शब्द सुनती है उस शब्द का ज्ञाता ब्रह्म है। नासिका से जो सूंघती है उस गन्ध का ज्ञाता ब्रह्म है रसना से जो रस लेती है उसके स्वाद का ज्ञाता ब्रह्म है। मन से जो संकल्प की फुरना होती है उस फुरना का ज्ञाता ब्रह्म है। बुद्धि जो निश्चय करती है उस

बुद्धि का ज्ञाता ब्रह्म है, और यह जो श्वास परश्वास लेती है इन श्वासों का चलाने वाला ब्रह्म है। हे सोम्य! चलना, फिरना, खाना, पीना, जो कुछ व्यवहार उस भैंस के अन्दर तुमको प्रतीत होता है वह सर्व व्यवहार ब्रह्म की ही सत्ता से होते हैं अन्यथा ब्रह्म से पृथक् भैंस में भैंस पना कुछ भी सिद्ध नहीं होता। इस वास्ते तुमको जबर भैंस की स्मृति होवे तब २ तुम हमारे कथन के अनुसार भैंस के सर्व अंगों में ब्रह्मका चिन्तन करो। इस प्रकार गुरूपदिष्ट अर्थ को वारंवार चिन्तन करने से उसका मन अत्यन्त शुद्ध होगया और उसको भैंस की अपेक्षा ब्रह्म की स्मृति रहने लगी। तदनन्तर गुरु ने उसको फिर उपदेश किया कि हे सोम्य! इसे भैंस के अन्दर तुमने जिस ब्रह्म को चिन्तन किया है उस ब्रह्म को अब तुम अपने ही अन्दर चिन्तन करो। जो ब्रह्म उस भैंस में था वही ब्रह्म तुम्हारे अन्दर भी है। जिस प्रकार तुमने भैंस के अन्दर ब्रह्म का चिन्तन किया है उसी प्रकार अपने आत्मा में ब्रह्म का चिन्तन करो। यह ब्रह्म तुमसे अत्यन्त समीप है। श्रुति भी यों ही कहती है।

'एषः द्रष्टा स्पृष्टा श्रोता घ्राता रसयितामन्ता बोद्धा कर्ता विज्ञानात्मा पुरुषः सपरेऽक्षरे आत्मनि संप्रतिष्ठते'

यह जो देखने वाला है, स्पर्श करने वाला है, श्रवण करने वाला है, सूंघने वाला है, रसका स्वाद लेने वाला है, जो मनन करने वाला है, तथा अनेक पदार्थों को जो जानने वाला है और जो अनेक कर्मों का कर्ता है वही निःसंदेह सर्वका ज्ञाता पुरुष है। अज्ञान से मुक्त होकर वही पुरुष परम् अक्षर रूप अविनाशी आत्मा में लीन होजाता है। जो सर्व जगत् का आधारभूत ब्रह्म है वह अज्ञान रूप अन्धकार से रहित है, नामरूप प्रपंच से रहित है, रक्त पीतादि वर्णों से रहित है, सत्त्व, रज, तम गुणों से रहित है. ऐसे शुद्ध स्वरूप ब्रह्म को कोई विरलाही अधिकारी श्रोत्रिय, ब्रह्मनिष्ठ आचार्य के उपदेश द्वारा यथार्थ रूप से जानता है। हे सोम्य! जो पुरुष पूर्वोक्त ब्रह्म के स्वरूप को अपना, आत्मा रूप करके अनुभव करलेता है वह वर्तमान शरीर में ही 'परम् अक्षरं प्रतिपद्यते' परंब्रह्म परमात्मा को प्राप्त होता है। 'स सर्वज्ञः सर्वोभवति' वह सर्व का ज्ञाता होता है, तथा सर्व का आत्मा होता है। इस प्रकार गुरु कृपा से भूत प्रतिबन्ध की निवृत्ति होने पर वह संन्यासी आत्मसाक्षात्कार करके परंब्रह्म को प्राप्त हुआ।

अपूर्ण

भजन

न दुश्मन है कोई अपना, न साजन ही हमारे हैं।
हमारी ज़ाते मुतलक़ से, हुये ये सब पसारे हैं॥
न हम हैं देह मन बुद्धि नहीं हम जीव न ईश्वर।
बलेहक़कुन हमारी से बने यह रूप सारे हैं॥
हमारी ज़ात नूरानी, रहे इक हाल पर दायम।
कि जिसकी चमक से चमके, यह सिहरो माह सितारे हैं॥
हर इक हस्त की है हस्ती हमारी जात पर क़ायम।
हमारी नज़र पड़ने से, नज़र आते नज़ारे हैं॥
बरंगे मुश्तलिफ़ नामो, सकल जो दमक मारे हैं।
हमारे नूर के शोले, से उठते यह शरारे हैं॥

(२)

सइयों नी! मैं प्रीतम पिया को रिझाऊंगी।
इक पल भी उसको न रुसाऊंगी॥ टेक॥
नयन हृदय का करूंगी बिछौना।
प्रेम की कलियों बिछाऊंगी॥
तन मन धन की भेट धरूंगी।
हो मैं सुख रिझाऊंगी॥ १॥

बिना पिया दुःख बहुत होवत है।
बहु दुःखां भरमाऊंगी ॥
भेद खेद को दूर छोड़ कर।
आत्म भाव सिखाऊंगी ॥ २ ॥
जे कहा पिया नहीं माने मेरा।
मैं आप गले लग जाऊंगी ॥
पिया गले लागी हुई बड़ भागी।
जन्म मरण छुट जाऊंगी ॥ ३ ॥
पिया गल लागे सब दुख भागे।
मैं पिया बिच लय हो जाऊंगी ॥
राम पिया मोरे पास बसत है।
मैं आप पिया हो जाऊंगी॥ ४ ॥

(३)

न ग़म दुन्याका है मुझको, न दुन्यासे किनारा है।
न लेना है न देना है, न हीला है न चारा है ॥
न अपने से मुहब्बत है, न नफ़रत गैर से मुझको।
सबों को जाते हक़ देखूं, यही मेरा नज़ारा है ॥
न शाही में मैं शैदा हूं, गदाई में न ग़म मुझ को।
जो मिल जावे सोई अच्छा, यही मेरा गुज़ारा है ॥
न कुफ़ इस्लाम से फ़ारिग़, न मिल्लत से गरज मुझको!
न हिन्दू गिबरो मुस्लिम हूं, सबों से पन्थ न्यारा है ॥

(४)

हर आन हंसी हर आन खुशी, हरवक्त अमीरी है बाबा।
जब आशिक मस्त फ़क़ीर हुये, फिर क्या दिलगीरी है बाबा ॥
है आशिक और माशूक जहां, वहां शाह वजीरी है बाबा।
न रोना है न धोना है, न दर्दे असीरी है बाबा ॥
दिन रात बहारें चोहले हैं, अरु इश्क सफीरी है बाबा।
जो आशिक होय सो जाने है, यह भेद फ़क़ीरी है बाबा ॥
है चाह फक़त इक दिलबर की, फिर और किसी की चाह नहीं
इक राह उसी से रखते हैं, फिर और किसी से राह नहीं ॥
यहां जितना रंज तरद्दुद है, हम एकसे भी आगाह नहीं।
कुछ मरने का सन्देह नहीं, कुछ जीने की परवाह नहीं ॥
कुछ जुल्म नहीं कुछ ज़ोर नहीं, कुछ दाद नहीं फर्याद नहीं।
कुछ कैद नहीं कुछ बन्द नहीं, कुछ शहर नहीं आबाद नहीं ॥
जिस सिम्त नज़र भर देखें हैं उस दिलबर की फुलवारी है ॥
कहीं सब्ज़े कहीं हरियाली है, कहीं फूलों की गुल क्यारी है
दिन रात मगन खुश बैठे हैं, अरु आस उसी की भारी है ॥
बस आपही वह दाता है, अरु आपही वह भंडारी है।
नित्य इशरत है नित्य फरहत है, नित्य राहत है नित्य शादी है
नित्य मेहरो करम है दिलबर का, नित्य खूबी खूब मुरादी है
अब उमड़ा दरिया उलफत का, हैरे चारों तरफ आबादी है
हर रात नई इक शादी है, हर रोज़ मुबारिक बादी है।
है तन तो गुरु के रंग बना, अरु मुंह पर हरदम लाली है ॥
जब ऐसो तरब कुछ और नहीं, जिस दिल सुरत संभाली है
होठों में राग तमाशे का, अरु गत पर बजती ताली है ॥
हर रोज़ बसन्त और होली है, और हर इक रात दिवाली है
हम आशिक जिस सनम के हैं, वह दिलबर सबसे आला है
उसने ही हमको जी बख्शा, उसने ही हमको पाला है।
दिल अपना भोला भाला है, और इश्क बड़ा मतवाला है ॥
क्या कहिये और नज़ीर आगे, अब कौन समझने वाला है।

(५)

वाह २ रे मौज फ़क़ीरांदी ॥ टेक ॥
कभी चबावें चना चबीना कभी लपट लें खीरांदी।
कभी तो ओढ़ें शाल दुशाला कभी गुदड़िया लीरां दी ॥
कभी तो सोवें रंग महल में कभी गली अहीरां दी।
संग तंग के टुकड़े खान्दे चाल चले अमीरां दी ॥

(६)

नी मैं पाया महरम यार जिसदे हुसन दी अजब बहार ॥ टेक

जिसदा जोगी ध्यान लगावत,
पीर पैगम्बर निश दिन ध्यावत।
पंडित आलिम अन्त न पावत,
जिसदा कल अजहार ॥ १ ॥ मीमैं०

"मैं" "तू" दा जब भेद मिटाया,
कुफर इस्लाम दा नाम भुलाया।
एन गैन दा फरक गंवाया,
खुल्या सब इसरार ॥ २ ॥ नीमै०
वहदत कसरत विच समाई,
कसरत वहदत होके भाई।
जुग विच कुल दी सूही पाई,
विसर गया संसार ॥ १ ॥ नीमै०
कहन सुनन ते न्यारा होई,
जामकां कहे सब कोई।
"है" "नाहीं" दा झगड़ा होई,
तिस दा गर्म बाजार ॥ ४ ॥ नीमै०
साकी ने भर जाम पिलाया,
बेखुद होके नदन मनाया!
गैरीयत दा नाम गवांया,
हुई जय जय कार ॥ ५ ॥ नीमै०

(७)

रे कृष्ण तैनें होरी कैसी मचाई ॥ टेक ॥
एक समय श्रीकृष्ण के मन में होरी खेलन की आई।
एक से होरी मचै नहीं कबहूं यातें करूं बहुताई ॥
यही प्रभू ने ठहराई ॥ १ ॥
पांच भूत की धातु मिला कर अंड पिचकारी बनाई।
चौदह भुवन रंग भीतर भरकर नाना रूप धराई ॥
प्रगट भये कृष्ण कन्हाई ॥ २ ॥
पांच विषय की गुलाल बनाकर बीच ब्रह्मांड उड़ाई।
जिस २ नैन गुलाल पड़ी उसकी सुध बुध बिसराई ॥
नहीं सूझत अपनाई ॥ ३ ॥
वेद अन्त अंजन की शलाका जिसने नैन में पाई।
तिस काहीं ठीक तम नाश्यो सूझ पड़ी अपनाई ॥
होरी कछु बनी न बनाई ॥ ४ ॥

(८)

कोई हाल मस्त कोई माल मस्त कोई तूती मैना सूए में।
कोई खान मस्त पैहरान मस्त कोई राग रागनी दूहे में ॥
कोई अमल मस्त कोई रमल मस्त कोई शतरंज चौपद जूये में
इक खुद मस्ती बिन और मस्त सब पड़े अविद्या कूपे में ॥

कोई अकल मस्त कोई शकल मस्त, कोई चंचलताई हांसी में
कोई वेद मस्त किताब मस्त कोई मक्के में कोई काशी में ॥
कोई ग्राम मस्त कोई धाम मस्त कोई सेवक में कोई दासी में
इक खुद मस्ती बिन और मस्त सब बंधे अविद्या फांसी में

कोई पाठ मस्त कोई ठाठ मस्त कोई भेरोंमें कोई काली में।
कोई ग्रन्थ मस्त कोई पन्थ मस्त कोई श्वेत पीतरंग लाली में
कोई काम मस्त कोई खाम मस्त कोई पूर्ण में कोई खाली में
इक खुद मस्ती बिन और मस्त सब अन्धे अविद्या जाली में

कोई हाट मस्त कोई घाट मस्त कोई बन पर्वत ओजाड़ा में
कोई जात मस्त कोई पांत मस्त कोई तात भ्रात सुत दारा में
कोई कर्म मस्त कोई धर्म मस्त कोई मसजिद ठाकुर द्वारा में
इक खुद मस्ती बिन और मस्त सब बहे अविद्या धारा में

कोई साक मस्त कोई खाक मस्त कोई खासे में कोई मलबे में
कोई योग मस्त कोई भोग मस्त कोई स्थिति में कोई चल २ में
कोई ऋषि मस्त कोई रिद्धि मस्त कोई लेन देन की कल२ में
इक खुद मस्ती बिन और मस्त सब फंसे अविद्या दल२ में

कोई ऊर्ध्व मस्त कोई अधः मस्त कोई बाहर में कोई अन्तर में
कोई देश मस्त कोई विदेश मस्त कोई औषध में कोई मन्तर में
कोई आप मस्त कोई ताप मस्त कोई नाटक चेटक तन्तर में
इक खुद मस्ती बिन और मस्त सब फंसे अविद्या धन्तर में

कोई तुष्ट मस्त कोई तृष्ट मस्त कोई दीर्घ में कोई छोटे में
कोई गुफा मस्त कोई सुफा मस्त कोई तूंबे में कोई लोटे में
कोई ज्ञान मस्त कोई ध्यान मस्त कोई असली में कोई खोटे में
इक खुद मस्ती बिन और मस्त सब रहे अविद्या टोटे में ॥